हिन्दी अंक 16 : दिसम्बर, 2017
चौ-मासिक, बेंगलूरु

Azim Premji University

# अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी

# लर्निंग कर्व

## कक्षा-कक्ष अनुभव : भाग एक

**सम्पादन समिति**

**प्रेमा रघुनाथ,** मुख्य सम्पादक
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी, बेंगलूरु
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

**चन्द्रिका मुरलीधर**
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी, बेंगलूरु
chandrika@azimpremjifoundation.org

**मधुमिता सुधाकर**
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी, बेंगलूरु
madhumita@azimpremjifoundation.org

**सम्पादकीय कार्यालय**
सम्पादक
अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस. कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी, बेंगलूरु 560 100
Phone: 080-66145136 / 5272
Fax: 080-66145230
Email: publications@apu.edu.in
Website: www.azimpremjiuniversity.edu.in.in

**सलाहकार**
सचिन मुले
एस. गिरिधर
उमाशंकर पेरिओडी

**इस अंक के विशेष सलाहकार**
निमरत खण्डपुर
शोभा लोकनाथ कवूरी

**हिन्दी अनुवाद**
नलिनी रावल
कविता तिवारी

**कॉपी एडिटर (हिन्दी)**
कविता तिवारी

**हिन्दी अंक सम्पादन**
राजेश उत्साही

**आवरण चित्र सौजन्य**
जगजोत सेठी

**डिज़ाइन**
Banyan Tree
98458 64765

**हिन्दी अंक लेआउट**
आदर्श प्रा.लि. भोपाल
+91-755-2555442

***कृपया ध्यान दें :***
*इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व (अँग्रेज़ी) XXVIII दिसम्बर, 2017 के लेखों के हिन्दी अनुवाद हैं। यह अनुवाद मार्च, 2022 में ई-कॉपी के रूप में तैयार एवं ऑनलाइन प्रकाशित हुआ है।। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।*

*'' अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और ग़ैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''*

## सम्पादक की ओर से

**कक्षा-कक्ष** एक ऐसा स्थान है जो अध्यापक का अपना स्थान होता है, एक ऐसा जादुई क्षेत्र जो यूँ तो शायद चार भौतिक दीवारों से घिरा होता है लेकिन अध्यापक उसे जितना चाहे उतना बड़ा कर सकते हैं। क्योंकि यह उनका अपना क्षेत्र है जहाँ वह अपना बहुत कुछ समर्पित कर देते हैं पर जितना देते हैं उससे कहीं अधिक उन्हें मिलता है।

यह आदान-प्रदान इतना महत्त्वपूर्ण है कि हमने 'कक्षा-कक्ष' पर ही एक अंक निकालने का निर्णय लिया और कक्षा कोई सीमित स्थान नहीं है बल्कि खेल के मैदान, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, गलियारे तथा स्कूल के फाटक के अन्दर की हर जगह तक उसका विस्तार है।

कक्षा के अन्दर होने वाली गतिविधियों में इतनी शक्ति होती है जो जीवन को बदल सकती है - उसे बेहतर या बदतर बना सकती है। हम अपने अनुभव से खुद भी यह बात जानते हैं कि कक्षा के माहौल के अनुसार हमारे स्कूल में जिस प्रकार का कार्य किया गया, उसने हमें सशक्त किया या अक्षम किया या फिर कोई प्रभाव नहीं डाला। यह शिक्षक और विद्यार्थी के बीच के रिश्ते के जैसा नहीं है, परन्तु उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें वह भावना और मनोदशा निहित है जो किसी कक्षा में विद्यार्थियों के बीच और खुद उनमें निर्मित की जाती है। साथ ही इसमें बच्चों और अध्यापकों के बीच की व्यक्तिगत और सामूहिक प्रतिक्रिया भी आ जाती है जो सब से समृद्ध आदान-प्रदानों में से एक है और जिसका विशेषाधिकार केवल अध्यापक को प्राप्त है।

भारतीय कक्षाएँ बहुत कम ही अपने अस्तित्व के महत्त्व को व्यक्त करती हैं : आम तौर पर उनका आकार आदर्श आकार से छोटा होता है, वे पर्याप्त रूप से हवादार नहीं होतीं और उनमें आवश्यक सुविधाएँ भी बहुत कम होती हैं। उदाहरण के लिए वहाँ पैंतीस से पचास बच्चों के लिए एक पंखा हो सकता है या शायद वह भी न हो। वहाँ साज-सामान भी बहुत कम होता है, केवल कुछ शेल्फ या टाटपट्टियाँ, मेज़-कुर्सियाँ और बैंचें। इस सादे परिवेश में हर रोज़, साल-दर-साल महत्त्वपूर्ण मानव प्रयास किए जाते हैं। इसके भीतर युवा वर्ग तथ्यों की जानकारी पाता है, परीक्षाएँ उत्तीर्ण करता है और इस प्रक्रिया से गुजरते हुए विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने, चिन्तन करने, विश्लेषण करने और अपनी ख़ुद की धारणाओं की आलोचना करने के अवसर मिलते हैं। यह सच है कि दुर्भाग्यवश कभी-कभी बच्चों को यहाँ सुरक्षा, जो कि उनका अधिकार है, की बजाय निर्दयता और डाँट-डपट मिलती है। लेकिन यह भी सच है कि अधिकांश अध्यापकों को अपने कार्य के महत्त्व की स्पष्ट समझ है और वे बच्चों को अपने विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देते हैं और उन्हें दूसरों के सामने ला खड़ा करने का जोख़िम उठाते हैं।

इन मान्यताओं को स्पष्ट करने के लिए इस अंक में कई लेख हैं जो कक्षा की सीमाओं और भविष्य में निवेश की दृष्टि से इसके महत्त्व का पता लगाते हैं। अध्यापन करने वाले शिक्षकों ने अपने ऐसे 'प्रयोगों' के बारे में लिखा है जिनमें से कुछ सफल रहे तो कुछ उतने सफल नहीं रहे क्योंकि वे अपने समय से काफ़ी आगे थे। अन्य लेख अध्यापक की उस ज़िम्मदारी की भावना को व्यक्त करते हैं जिसे वे विभिन्न प्रकार की बृहद भूमिकाएँ निभाते हुए महसूस करते हैं या फिर अचानक अनपेक्षित रूप से अधिगम हो जाने पर जो उपलब्धि और सन्तोष की भावना उनके मन में आती है। अधिकांश अध्यापक जिस तरह की कड़ी मेहनत करते हैं और अपने कार्य में जिस सोच-विचार का प्रयोग करके इस रोमांचक नए समय में आशावादिता का संवर्धन करते हैं, उसका विवरण भी इस अंक में है।

जब हमने कक्षा के अनुभवों पर एक पूरा अंक निकालने की बात सोची तो हमें इतनी जबर्दस्त प्रतिक्रिया मिली कि हमने भाग 1 और 2 के रूप में दो अंक निकालने का निर्णय लिया। ताकि इन सभी प्रेरक लेखों को स्थान दिया जा सके। ये लेख इतने विचारोत्तेजक थे कि हमें लगा कि प्रत्येक लेख पढ़ा जाएगा - और बार-बार पढ़ा जाएगा – प्रत्येक लेख में निहित विचारों एवं सोच को आत्मसात करने के लिए और ऐसी ही परिस्थिति का सामना करने में दूसरों के लिए यह अंक सन्दर्भ मार्गदर्शी पुस्तक का काम करेंगे।

हम यहाँ बताना चाहेंगे कि हमें बहुत सारे लेख हिन्दी में मिले थे। हम अपने अनुवादकों, अनन्या पाठक, नलिनी रावल और रमणीक मोहन द्वारा किए गए प्रशंसनीय कार्य के लिए उनका आभार प्रकट करना चाहेंगे जिन्होंने उन लेखों का सही भाव अंग्रेजी में प्रस्तुत किया। हम अपने सहयोगी राजेश उत्साही को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अनुवाद कार्य का प्रभावी संयोजन किया।

हम चाहेंगे कि हमारे पाठक अपने ऐसे विचार साझा करें जो खाई को पाटने का काम करें ताकि साझाकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ाई जा सके। आलोचना और फीडबैक का स्वागत है और हम निम्नलिखित ईमेल पर अपने पाठकों के विचार जानने को तत्पर हैं।

**प्रेमा रघुनाथ**
सम्पादक
prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

**अनुवाद :** नलिनी रावल

# इस अंक में

मैं शिक्षिका होने के साथ-साथ एक विद्यार्थी भी हूँ 04
लुबना अहमद

समावेशन की शुरुआत - कक्षा में बैठने की व्यवस्था 07
नीलम शिन्दे

नक़्शे की भूलभुलैयाँ 09
रंजना सिंह

विचारों और अवधारणाओं को संस्थागत रूप देना 13
अनिल अंगडिकी

क्ले आर्ट 16
चेतन पाटली

कक्षा अवलोकन 19
दीपक दीक्षित

कहानी से गणित शिक्षण 22
गजेन्द्र कुमार देवांगन

शिक्षक का आत्मावलोकन 24
कनिका श्रीवास्तव

निरर्थक के लिए स्थान बनाना 25
मालविका राजनारायण

जो बच्चे नहीं सीख पाते ! 29
मोहम्मद इसरार

जब राक्षस दोस्त बन जाए 32
पोम्पा घोषाल

सामाजिक नज़रिए को बदलना 34
प्रतिभा कटियार

पढ़ने की आदत को प्रोत्साहित करने में पुस्तकालयों की भूमिका 36
राकेश रौथान

गणित की कक्षा 39
सउद अहमद ख़ान

अध्यापकों के सीखने और प्रेरित होने में सहायक कारक 40
सुनील बिष्ट

क्या अधिगम हुआ? 44
तपस्या साहा

# मैं शिक्षिका होने के साथ-साथ एक विद्यार्थी भी हूँ

लुबना अहमद

हम सभी...और वे सब भी अच्छे शिक्षक और शिक्षिकाएँ हैं जो अच्छे विद्यार्थी भी हों...जो हमेशा नई बातें सीखने और विद्यार्थियों के प्रबन्धन के नए तरीक़ों के बारे में जानने के लिए उत्सुक रहते हों। कुछ नया खोजने की यही भावना उन्हें सतर्क और मुस्तैद रखती है और उनके कार्य को दिलचस्प बनाती है।

अभिनेता, कलाकार, निर्देशक, मार्गदर्शक, परामर्शदाता, सुगमकर्ता, अनुकरणीय व्यक्ति, प्रेरणास्रोत, गुरु, बहु-कार्यक्षम, जीवन प्रशिक्षक, मध्यस्थ, प्रबन्धक, नेतृत्वकर्ता, सुझाव देने वाला, संचार कौशल, कायल करने का कौशल, वाकपटुता का कौशल इत्यादि। यह सूची तो अन्तहीन है लेकिन ये सारी बातें एक ही व्यक्ति के बारे में हैं और वह है - शिक्षक।

### बहु-भूमिकाएँ निभाने वाला एक व्यक्ति

जिस व्यक्ति से इन सब भूमिकाओं को निभाने की अपेक्षा की जा रही है वह व्यक्ति है स्कूल का एक शिक्षक। आज शिक्षक जिस चुनौती का सामना कर रहे हैं वह यह है कि अन्ततः ये सारी भूमिकाएँ शिक्षण-अधिगम के अनुभव की प्रभावशीलता के लिए कितनी अच्छी तरह से सहक्रिया करती हैं।

यह सब कुछ कितने उम्दा तरीक़े से व्यक्त कर दिया गया, कितनी आसानी से कह दिया गया, लेकिन इसे लागू करना कितना कठिन है।

मैंने एक स्कूल शिक्षिका के रूप में अपने दस साल की यात्रा को पुनः रचने का प्रयास किया है और उससे प्राप्त अन्तर्दृष्टि एवं अनुभवों को काग़ज़ पर उतारने की कोशिश की है। इन अन्तर्दृष्टियों एवं अनुभवों ने मेरे व्यक्तित्व को आकार दिया और एक पेशेवर के रूप में विकसित होने में मेरी मदद की। इस लेख में मैंने विशेष रूप से अपने कक्षा सम्बन्धी अनुभवों का उल्लेख किया है।

### शिक्षक से की जाने वाली अपेक्षाएँ

शिक्षक को एक अच्छा अभिनेता होना चाहिए और उसकी आवाज़ ऊँची और बोली स्पष्ट होनी चाहिए ताकि वह विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित कर सके। कक्षा में उसका प्रदर्शन ऐसा होना चाहिए कि विद्यार्थियों की रुचि उस विषय में बढ़े। उसे चाहिए कि वह विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया में उचित निर्देश दे और उसे आसान बनाए। कक्षा में आधे घण्टे या चालीस मिनट का जो समय शिक्षक को मिलता है उसमें उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उस दिन के लिए निर्धारित उद्देश्य पूरे हो जाएँ और विद्यार्थी विषय के साथ-साथ अच्छे मूल्य भी सीखें।

शिक्षक का हर पहलू - उसका व्यक्तित्व, उसके परिधान, उसका सम्प्रेषण कौशल, यहाँ तक कि उसके धीरज का स्तर - विद्यार्थी ये सब कुछ बड़े ध्यान से देखते हैं और बारीक़ी से इनकी जाँच करते हैं। शिक्षक के इन पहलुओं को लगातार परखा जाता है।

हमें विद्यार्थियों व शिक्षकों का अनुपात नहीं भूलना चाहिए जो चालीस और एक या पचास और एक और कभी-कभी तो साठ और एक का भी हो सकता है यानी एक शिक्षक और चालीस, पचास या साठ विद्यार्थी। और अगर दसवीं, ग्यारहवीं या बारहवीं कक्षा हो तो वे विद्यार्थी आप के बराबर या आपसे लम्बे (और ताक़तवर) भी हो सकते हैं। ऐसी कक्षाओं के साथ काम करने के लिए नेतृत्व कौशल और उच्च स्तर की परिपक्वता की ज़रूरत होती है। इन कक्षाओं में चिल्लाने, डाँटने और भावनात्मक होने से बात और बिगड़ सकती है। यह परिस्थिति वाकई विकट होती है।

मैं पिछले दस सालों से इस पेशे में हूँ और मुझे अब भी लगता है कि मैं एक परिपूर्ण या आदर्श शिक्षिका नहीं बन पाई हूँ। मैं अभी भी सीख रही हूँ और बेहतर शिक्षिका बनने के लिए अपने कौशलों को प्रखर करने के प्रयास में लगी हुई हूँ। हर साल, हर महीने, हर दिन और अपने शिक्षण के हर घण्टे में जब मैं विद्यार्थियों को विषय के मुख्य कौशल सिखाती हूँ और उनके साथ बातचीत करती हूँ तो मैं उनके साथ व्यवहार करने और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में संवर्धन करने के नए-नए पहलुओं के बारे में सीखती हूँ।

### मेरे अनुभव और चुनौतियाँ तथा मैंने उनसे क्या सीखा

मैं अपने कुछ अनुभव यहाँ साझा कर रही हूँ जिनमें से कुछ प्रमुख घटनाओं या चुनौतियों के रूप में हैं और जिनका सामना मैंने पिछले दस वर्षों में किया है तथा जिन्होंने कक्षा में मेरे प्रदर्शन व विद्यार्थियों के प्रति मेरे व्यवहार को समुचित आकार दिया है और खुद को बदलने और विकसित होने की प्रेरणा दी है।

एक दिन जब मैं त्रिकोणमिति पढ़ाने के लिए अपनी कक्षा में गई तो मुझे महसूस हुआ कि विद्यार्थी पढ़ने के मूड में नहीं हैं। एक विद्यार्थी ने कोई टिप्पणी की और बाकी सब हँसने लगे। उन्हें डाँटने-डपटने या शिक्षकों का आदर करने के बारे में लेक्चर देने की बजाय मैंने उनके व्यवहार पर ध्यान न देने और पाठ पढ़ाने का फैसला किया। मैंने सोचा कि मैं अपना टॉपिक एक अलग तरह से पेश करूँ। इससे दो उद्देश्य पूरे होंगे, एक तो विद्यार्थियों का ध्यान दूसरी ओर जाएगा और वे पाठ सीखने की ओर प्रवृत्त होंगे। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे स्कूल के भवन के पास गए बिना या उसे छुए बिना उसकी ऊँचाई का पता लगा सकते हैं। अब तो वे सोच में पड़ गए और मैंने भी उन्हें सोचने का समय दिया। तब मैंने उनसे कहा कि आज जो टॉपिक हम पढ़ने वाले हैं वह उन्हें बताएगा कि ऐसा करना सम्भव है और इसे कैसे किया जाए। बस, इस बात ने उनका ध्यान आकर्षित किया और मैं अपना शिक्षण-कार्य आगे बढ़ा पाई।

*मैंने क्या सीखा : नकारात्मकता से ध्यान हटाना और सकारात्मकता की ओर बढ़ना।*

एक बार पढ़ाते समय मैंने देखा कि एक विद्यार्थी जम्हाई ले रहा था (सामान्य तौर पर आख़िर के दो पीरियडों में ऐसा होता है), फिर एक और विद्यार्थी ने जम्हाई ली फिर एक और ने... तो मुझे एहसास हुआ कि मेरे लेक्चर के कारण ऐसा हो रहा है। मैं लगभग 10-12 मिनटों से अविराम बोले जा रही थी और यह अवधि विद्यार्थियों के ध्यान देने की सीमा की अवधि से कहीं अधिक थी। इसलिए मैं रुकी और बोलना एकदम बन्द कर दिया। विद्यार्थियों ने इस चुप्पी पर ध्यान दिया। एक बार फिर उनका ध्यान मेरी ओर था और इस बार मैंने प्रश्न पूछने के माध्यम से पढ़ाना जारी रखा, उन्हें शिक्षण प्रक्रिया में शामिल किया और खुद निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए प्रोत्साहित किया। प्रश्नों के उत्तर देने में उनकी मदद करने के लिए मैं उन्हें मुख्य शब्दों के रूप में संकेत देती और जब वे सही उत्तर देते तो मैं उनकी प्रशंसा करती। इससे विद्यार्थी सीखने की ओर अभिप्रेरित हुए और उस दिन के अधिगम उद्देश्यों को प्राप्त करने में भी सहायता मिली।

*मैंने क्या सीखा : सीखने की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की भागीदारी एकरसता को तोड़ने में मदद करती है और शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावी बनाती है।*

प्रत्येक शिक्षार्थी या विद्यार्थी अपनी गति से सीखता है और कक्षा में हमारे पास विद्यार्थियों का एक मिश्रित समूह होता है। मैं जब भी कक्षा को किसी अवधारणा का परिचय देती हूँ तो सरल से जटिल की ओर जाती हूँ। उदाहरण के लिए, कक्षा 9 को बीजगणित पढ़ाने के दौरान मैं उनकी पिछली कक्षाओं यानी छठी, सातवीं और आठवीं में पढ़ाई गई अवधारणाओं की पुनरावृत्ति करवाती हूँ और उन्हें संक्षेप में दोहराती हूँ। ऐसा करने से विद्यार्थी विषय के साथ जुड़ते हैं और टॉपिक को अच्छी तरह से सीख पाते हैं। कम्प्यूटर और पहले से तैयार मॉड्यूल जैसे मल्टीमीडिया साधनों का उपयोग करने से भी सीखने में सुधार होता है।

*मैंने क्या सीखा : कक्षा को पढ़ाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कक्षा में कई तरह के विद्यार्थियों का मिश्रण होता है। इसलिए अपनी शिक्षण विधि को तदनुसार रूपान्तरित करना चाहिए।*

कुछ साल पहले मैंने अपनी कक्षा से फीडबैक देने को कहा। मैंने उनसे कहा कि वे अपने शिक्षकों के बारे में दो पसन्दीदा और दो नापसन्दीदा बातें लिखें। अधिकांश उत्तर अनुमानित और अपेक्षानुसार ही थे लेकिन यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनमें से कई विद्यार्थियों ने लिखा कि एक शिक्षक गुस्सैल हैं और उन पर चिल्लाते हैं। उन्होंने यह भी लिखा कि वैसे तो वे शिक्षक बहुत अच्छे हैं किन्तु गुस्सा बहुत करते हैं। मैंने अनुमान लगाया कि वे मेरे बारे में ही ऐसा कह रहे थे। मुझे बहुत चिन्ता हुई क्योंकि उन्हें यह बात बेहद अखरती होगी तभी तो उन्होंने इसका उल्लेख किया। तब मुझे महसूस हुआ कि मुझे अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए था क्योंकि इसका प्रभाव मेरे विद्यार्थियों पर पड़ रहा था।

*मैंने क्या सीखा : शिक्षक की डाँट-डपट से बच्चों का ध्यान पढ़ाई से हटता है। शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने विद्यार्थियों के लिए एक 'ख़ुशगवार' माहौल बनाएँ।*

एक स्टाफ मीटिंग में हमारी प्रधानाध्यापिका जी ने मुझसे पूछा कि क्या मैंने अपना नियत कार्य (असाइन्मेंट) पूरा कर लिया है। मैंने वह कार्य नहीं किया था। मुझे लगा कि अब अन्य शिक्षकों के सामने मुझे डाँट पड़ेगी और इतनी शर्मिन्दगी महसूस हुई कि लगा कि (अलंकारिक भाषा में कहूँ तो) जमीन फट जाए और मैं उसमें समा जाऊँ। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। प्रधानाध्यापिका जी ने मेरी तरफ देखा और कहा कि वे मेरी स्थिति समझती हैं कि चूँकि मैं अन्य ज़िम्मेदारियों के कारण व्यस्त थी इसलिए मैं वह नियत कार्य नहीं कर पाई और फिर उन्होंने पूछा कि मैं वह कार्य कब तक पूरा कर सकूँगी। उनकी मुस्कराहट और उत्साहजनक शब्दों से मेरी घबराहट दूर हुई और मेरे मन में उनके लिए आदर भाव बढ़ गया। मैंने अपना कार्य और अधिक रुचि और उत्साह के साथ पूरा किया और वह काम बहुत अच्छा भी हुआ। अपनी इस सीख को मैंने कक्षा में भी लागू किया। विद्यार्थियों से यह उम्मीद की जाती है कि वे रोज सारे विषयों का काम पूरा करें। अब मैं इस बात का ध्यान रखती हूँ कि उन्हें कितना काम मिला है और फिर उसके हिसाब से उन्हें अपने विषय का कार्य देती हूँ। जब वे प्रश्न हल

कर रहे होते हैं तब मैं कक्षा का चक्कर लगाती हूँ और उनसे "बहुत अच्छे", "हाँ, आप सही हैं...लेकिन इसे ठीक करें" जैसे सकारात्मक शब्द कहकर उन्हें बेहतर काम करने का प्रोत्साहन देती हूँ, भले ही उन्होंने एक ही पंक्ति लिखी हो जो पूर्णत: या आंशिक रूप से ही सही हो, तब भी।

*मैंने क्या सीखा : शिक्षक की प्रोत्साहन देने वाली मुस्कान या विद्यार्थियों को समझने वाली दृष्टि से शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्धों को बेहतर बनाने में काफ़ी मदद मिलती है और परिणामस्वरूप अधिगम भी बेहतर होता है।*

गणित एक ऐसा विषय है जिसे याद नहीं किया जा सकता। इसके लिए बहुत सारा अभ्यास करना ज़रूरी है क्योंकि तभी अवधारणाओं को आत्मसात किया जा सकता है। कक्षा में पढ़ाने के बाद मैं विद्यार्थियों से यह अपेक्षा करती हूँ कि वे घर जाकर उन अवधारणाओं का अभ्यास करेंगे जो उन्होंने उस दिन कक्षा में सीखी हैं। केवल कुछ ही विद्यार्थी ऐसा करते हैं, अधिकांश विद्यार्थी पुनरावृत्ति नहीं करते और इसीलिए वे अगली अवधारणा को समझने या 'पचाने' के लिए तैयार नहीं होते। अगर यह चक्र चलता रहे तो कुछ समय बाद वे विषय पर अपनी पकड़ खो बैठते हैं। ऐसी स्थिति में मैं उनसे कहती हूँ कि वे इस विषय पर सिर्फ पन्द्रह मिनट के लिए ध्यान दें - इसके ऊपर एक मिनट भी नहीं। यह उपाय कुछ हद तक कारगर सिद्ध हुआ है।

*मैंने क्या सीखा : मैं अभी भी सीख रही हूँ। विद्यार्थियों को सीखने के लिए 'प्रेरित' करने के लिए मुझे और प्रयास करने हैं।*

**निष्कर्ष**

अन्त में, जापानी भाषा का एक शब्द है 'काइजेन', जिसका अर्थ है अपनी कार्य प्रथाओं में निरन्तर सुधार करना भले ही वह थोड़ा-थोड़ा ही क्यों न हो। अब तक की मेरी यात्रा 'छोटे-छोटे सबक़' की एक शृंखला रही है, जिनसे मिली सीख से मुझे अपने कौशलों का संवर्धन करने और एक बेहतर शिक्षक व इंसान बनने में मदद मिली है।

और एक शिक्षक के रूप में मेरी यात्रा जारी है...कहा भी तो गया है कि सीखने की प्रक्रिया में कभी विराम नहीं लगता..।

**लुबना अहमद** ने स्नातक होने के बाद लगभग 12 वर्ष तक आई.टी. कम्पनी में कार्य किया। उन्होंने एन.आई.आई.टी. में सीनियर ग्रुप लीडर से लगाकर गुणवत्ता नियंत्रण के प्रमुख के रूप में विभिन्न भूमिकाएँ निभाईं। फिर अपने परिवार की देखभाल करने के लिए उन्होंने नौकरी से अवकाश लिया और इसी दौरान गणित में दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर व बी.एड. की पढ़ाई की। अब वे ग्रेटर नोएडा के एक अग्रणी स्कूल में गणित की शिक्षिका के रूप में कार्यरत हैं। उनसे lubnaafaque@yahoo.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

# समावेशन की शुरुआत - कक्षा में बैठने की व्यवस्था

नीलम शिन्दे

जब मैंने पहली बार विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ काम करना शुरू किया तो मैं बहुत उत्साहित थी और अपने विषय से बहुत प्रेम करती थी। एक व्यावसायिक चिकित्सक के रूप में मुझे कक्षा में बच्चों का अवलोकन करना होता था और इसके अलावा जब वे अन्य पाठ्येतर क्रियाएँ जैसे खेल, कला तथा स्वयं की देखभाल करते थे, तब भी उनकी ओर ध्यान देना होता था। इसके बावजूद मुझे यह नहीं मालूम था कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के साथ कक्षा का प्रबन्धन कैसे करना चाहिए। मैं कक्षा में यह सोचकर गई कि अगर पाठ योजना अच्छी है तो सब कुछ अच्छी तरह से हो जाएगा। लेकिन फिर मुझे पता चला कि ऐसा नहीं था।

विशेष स्कूल में आपको विद्यार्थियों का एक विषम समूह मिल सकता है जिसमें छह से आठ बच्चे विशेष आवश्यकता वाले हों। हाँ, अगर स्कूल में प्रशिक्षण और विकलांगता के विशिष्ट वर्ग को सहायता देने की व्यवस्था है तो बात और है। यदि कक्षा में दो विद्यार्थियों को थोड़ी बहुत मदद चाहिए, दो को ध्यानाभाव एवं अतिसक्रियता विकार (attention deficit hyperactivity disorder) या ADHD की समस्या है, तीन शारीरिक रूप से अक्षम हैं और एक या दो में स्वलीनता के लक्षण हैं तो ऐसी परिस्थिति में आप समझ सकते हैं कि बिना सहायता के आप क्या, कोई भी व्यक्ति कुछ नहीं कर पाएगा।

तब मुझे एहसास हुआ कि ऐसे में कक्षा प्रबन्धन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और वांछित होता है। यह ठीक है कि अपने विषय का ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है लेकिन कक्षा प्रबन्धन के बिना आप उन सब अद्भुत बातों को पढ़ाने में सक्षम नहीं हो सकते। सौभाग्य से, आप यह देख पाएँगे कि कक्षा की कार्यविधि में पाठ्यचर्या, अनुशासन और पाठ योजना जैसी बड़ी रणनीतियों से ही नहीं वरन इन छोटी-छोटी बातों से भी सुधार होता है।

जिन शिक्षकों को समावेशन का कोई अनुभव नहीं होता उनके लिए शिक्षा प्रणाली के बदलते परिदृश्य के साथ-साथ एक सामान्य कक्षा में विभिन्न आवश्यकता वाले बच्चों को समावेशित करना एक बड़ी चिन्ता का विषय होता है। व्यक्तिगत रूप से मुझे 'समावेशन' शब्द बहुत कल्पनापूर्ण लगता है जो पाश्चात्य विचारों से प्राप्त हुआ है। इसका मतलब नियमित कक्षा में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को बिठा देना मात्र नहीं है। यह बात है दृष्टिकोण की, केवल किसी कार्यक्रम की नहीं।

आइए, हम बैठने की व्यवस्था जैसे कुछ 'छोटे-छोटे' बदलावों पर नज़र डालें जो स्थिति में काफी अन्तर ला सकते हैं और यह देखें कि ये बदलाव विद्यार्थियों के प्रदर्शन को कैसे प्रभावित करते हैं।

जब हम पारम्परिक कक्षा के बारे सोचते हैं तो हमारे सामने एक ऐसा चित्र उभरता है जिसमें बच्चे अपनी कुर्सी-डेस्क पर बैठे हैं और शिक्षक उनके सामने किसी पाठ की अवधारणा समझा रहे हैं। हमने यह भी महसूस किया है कि पहली पंक्ति में बैठे हुए विद्यार्थी मेहनती माने जाते हैं। वे नहीं चाहते कि कोई भी महत्त्वपूर्ण चीज़ उनसे छूट जाए। कभी-कभी शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी लम्बाई के अनुसार बिठाते हैं ताकि वे आसानी से देख सकें या शैक्षिक सरोकारों के कारण वे कभी-कभी छोटे समूह भी पसन्द करते हैं जिससे विद्यार्थी-सहयोग को बढ़ावा मिले।

हो सकता है कि आपने बैठक व्यवस्था के कुछ नवीनतम तरीक़े भी देखे हों जहाँ बच्चों को सीखने और खोजबीन करने के लिए कक्षा में इधर-उधर जाने की अनुमति दी जाती है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए भी यह असामान्य बात नहीं है। आपको आश्चर्य हो सकता है अगर मैं कहूँ कि डेस्क आदि के स्थान पर मेज़ या दरियों का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन मैं ऐसा नहीं करूँगी। जब किसी बच्चे को दूसरों के पास बैठकर काम करने में कोई समस्या हो तो डेस्क भी ठीक रहती हैं।

कक्षा में बैठने की व्यवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण है, ख़ासकर अगर आपके पास एक ऐसा विद्यार्थी है जिसे व्यवहार सम्बन्धी समस्या है या किसी को शारीरिक/दृष्टि सम्बन्धी कोई परेशानी है। ऐसी परिस्थिति में रचनात्मक रूप से सोचना पड़ता है। एक शिक्षक के रूप में आपको विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के लिए विशिष्ट प्रयत्न करने होंगे, क्योंकि उन्हें सामान्य क्रियाओं को करने/समझने के लिए विशेष प्रयास करने पड़ते हैं और उनका आत्मसम्मान काफ़ी हद तक कक्षा की व्यवस्था से प्रभावित होता है।

हो सकता है कि आप इस तरीक़े से परिचित हों और शायद पहले से ही ऐसा कुछ कर भी रहे हों; जैसे बैठने की पंक्तिबद्ध व्यवस्था, गोलाकार और अर्ध-गोलाकार व्यवस्था, मुक्त व्यवस्था आदि। हर व्यवस्था में अच्छाइयाँ और कमियाँ दोनों हैं। बैठने की व्यवस्था का विद्यार्थी-प्रदर्शन में बहुत बड़ा योगदान होता है। शिक्षक सोच-विचार करके विशेष

परिस्थिति, कक्षा और सभी विद्यार्थियों को दृश्यता प्रदान करने के अनुरूप बैठने की व्यवस्था और उसकी अवधि का चयन कर सकते हैं। कोई एक व्यवस्था हर स्थिति में ठीक नहीं बैठ सकती क्योंकि आपकी आवश्यकताएँ और शिक्षण उद्देश्य भिन्न हैं। अगर आप कक्षा में यह घोषणा करते हैं कि इस प्रकार की विशेष व्यवस्था इसलिए की जा रही है क्योंकि कक्षा में कोई एक विद्यार्थी अक्षम है तो आप उसे कक्षा से विलग कर रहे हैं। मेरी सलाह यह है कि इसे कक्षा की एक सामान्य नीति के रूप में लिया जाए।

कुछ उचित समाधान बताते हैं कि किस तरह कक्षा का वातावरण बदलकर कक्षा के क्रियाकलापों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे की भागीदारी बढ़ाई जा सकती है और उसे एक सफल शिक्षार्थी  बनाया जा सकता है।

जो बच्चा व्हीलचेयर का प्रयोग करता है उसके लिए मुक्त पंक्ति वाली व्यवस्था ठीक रहेगी। कुछ बच्चों को कम ऊँचाई वाली कुर्सी, मज़बूत डेस्क और लिखने के लिए ढलवाँ बोर्ड जैसे फर्नीचर की ज़रूरत होगी। इसी प्रकार स्वलीन विद्यार्थी के लिए एक संरचित कार्यक्रम उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना किसी कोर्स के लिए पाठ्यक्रम। कम अवधि तक ध्यान केन्द्रित करने वाले किसी विद्यार्थी को आप खिड़की या दरवाज़े के पास बिठाना पसन्द नहीं करेंगे क्योंकि वहाँ उसका ध्यान बँटने के पर्याप्त अवसर होंगे।

जो बच्चे ठीक से सुन नहीं सकते वे होंठों की गति देखकर बातें समझने का प्रयास करते हैं। उन्हें आगे की तीन पंक्तियों में बिठाना ठीक होगा और पढ़ाते समय आप अपने बोलने की गति न तो बदलें और न ही उनकी ओर पीठ करके बोलें। आपको बीच-बीच में अपनी बात दोहरानी भी पड़ सकती है अतः अपना धीरज बनाए रखें। कक्षा में भरपूर रोशनी होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी शिक्षक के होंठों की गति स्पष्ट रूप से देख सकें और उनकी बातें समझ सकें। लेकिन स्वलीन विद्यार्थियों के सन्दर्भ में रोशनी की तीव्रता में समायोजन करने से उन्हें बहुत लाभ होगा।

दूसरे, सुनने में दिक़्क़त महसूस करने वाले बच्चों के लिए गतिशील कुर्सी की व्यवस्था हो सके तो उन्हें आसानी होगी क्योंकि बोलने वाले से उनकी दूरी का प्रभाव उनके समझने पर पड़ता है। कक्षा के क्रियाकलापों या स्कूल के समारोहों के दौरान अगर ये बच्चे संकेत भाषा इंटरप्रेटर का प्रयोग कर रहे हों तो इंटरप्रेटर के सामने न चलें जैसा कि हम अनजाने में अक्सर करते हैं। आपने देखा होगा कि कुछ बच्चे श्रवण यंत्र (हीरिंग एड) का प्रयोग करते हैं। इसलिए उनके आसपास होने वाले शोर-शराबे पर नियंत्रण रखना ज़रूरी है। अगर बाक़ी के बच्चे बातें करते रहेंगे या फुसफुसाएँगे तो इन बच्चों को सुनने में कठिनाई होगी।

दृष्टिबाधित बच्चों के साथ काम करते वक़्त इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कक्षा की भौतिक व्यवस्था को बार-बार न बदला जाए। अगर कोई बदलाव करें भी तो उन्हें उसके बारे में पहले ही सचेत कर देना चाहिए। यही बात स्वलीन बच्चों पर भी लागू होती है जिन्हें बार-बार होने वाले परिवर्तन अच्छे नहीं लगते।

ये बच्चे बेहद उद्विग्न रहते हैं और हो सकता है कि वे अपनी भावनाओं को व्यक्त न करना चाहते हों। इसलिए फर्नीचर और बैठने की व्यवस्था को जरा बदल देने से उन्हें न केवल इधर-उधर जाने की स्वतंत्रता मिल जाती है बल्कि वे स्वेच्छा से कक्षा के क्रियाकलापों में भाग भी ले सकते हैं। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं जब क्रियाकलाप के दौरान फर्नीचर से ज़्यादा बच्चे के पास बैठा हुआ उसका मित्र या उसके शिक्षक महत्त्वपूर्ण बदलाव ला सकते हैं।

समावेशी प्रणाली में शिक्षकों को विभिन्न व्यक्तित्व और सीखने की क्षमता वाले विद्यार्थियों की ज़रूरतों को पूरा करना होता है। विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के साथ स्कूल छोड़ने और मनोवैज्ञानिक आघात से ग्रस्त होने का ख़तरा अधिक होता है। मुझे लगता है कि पाठ योजना के अलावा कुछ मूलभूत बातों पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है जैसे बच्चे की दिनचर्या को समझना, बैठने की ऐसी व्यवस्था करना जिससे कक्षा पर बेहतर नियंत्रण किया जा सके और साथ ही शैक्षिक सफलता हासिल करने में इन बच्चों की मदद करना। इसलिए शिक्षकों के लिए यह ज़रूरी है कि उन्हें बैठने की व्यवस्था का ज्ञान हो ताकि विविध शारीरिक और बौद्धिक विशेषताओं वाले बच्चों को समावेशी वातावरण में पढ़ाया जा सके।

"सभी के लिए शिक्षा" और शिक्षा का अधिकार अधिनियम सम्बन्धी आन्दोलन को सभी क्षेत्रों से मान्यता मिल रही है। यह समावेशी शिक्षा के अन्तराल को दूर करने और शिक्षकों को सभी विद्यार्थियों के अनुरूप शिक्षण विधियों से लैस करने का रास्ता हो सकता है। यदि आप मूल शैक्षिक अभ्यासों की अधिकाधिक पूर्व योजना बनाएँगे तो आप आकस्मिक स्थितियों का सामना भी आसानी से कर पाएँगे जो कि अक्सर सामने आती ही रहती हैं।

**नीलम शिन्दे** को भारत और प्रशान्त क्षेत्र में विकलांग वयस्कों और बच्चों के कार्यक्रमों/परियोजनाओं के प्रबन्धन का पेशेवर अनुभव है। वे विशेष और समावेशी स्थिति में विशेष आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों का प्रबन्धन करने के लिए पाठ्यक्रम डिज़ाइन करने के साथ-साथ विशेष शिक्षक भी तैयार करती हैं। वे आजीविका हेतु गतिविधियाँ और ऐसी अनुकूलनीय रणनीतियाँ तैयार करती हैं जिससे अक्षम बच्चे और वयस्क घर, स्कूल तथा कार्य क्षेत्र में उत्तम और स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकें। उनसे nilshind@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

# नक़्शे की भूलभुलैयाँ

रंजना सिंह

इस वर्ष मेरे विद्यार्थी दूसरी कक्षा से उत्तीर्ण होकर तीसरी कक्षा में प्रवेश कर गए हैं। मैं इनके साथ तब से काम कर रही हूँ जब ये पहली कक्षा के सत्र के अन्त की ओर बढ़ रहे थे। दिल्ली के सरकारी विद्यालयों में पहली व दूसरी कक्षा तक एन. सी. ई. आर. टी. की गणित, अँग्रेज़ी तथा हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें ही पढ़ाई जाती हैं और कक्षा तीन से 'आस-पास' यानी पर्यावरण अध्ययन की पुस्तक के साथ 'मेरी दिल्ली' जिसे सामान्यतः सामाजिक अध्ययन के रूप में सम्बोधित किया जाता है, पाठ्यक्रम का भाग बनती हैं। क्योंकि हम दिल्ली प्रदेश में रहते हैं इसलिए यह माना जा सकता है कि हमें हमारे प्रदेश के बारे में जानकारी होनी चाहिए इसलिए 'मेरी दिल्ली' जो कि एस. सी. ई. आर. टी. द्वारा निर्मित पुस्तक है, अपने आप में एक अहम भूमिका रखती है।

इस लेख द्वारा मेरा उद्देश्य इस पुस्तक की भूमिका को नकारने का नहीं है अपितु इसके सन्दर्भ व बच्चों के साथ इसकी अन्त:क्रिया को समझने का है। क्योंकि जब मैंने 'मेरी दिल्ली' का प्रथम पाठ खोला तो मैं हैरान रह गई यह देखकर कि पहला पाठ दिल्ली के मानचित्र से शुरू होता है। जहाँ मेरे विद्यार्थियों ने दूसरी कक्षा तक सिर्फ़ कुछ ज्यामितीय आकृतियाँ व उनके पैटर्न तक की ही समझ विकसित की थी वहाँ दिल्ली के इस मानचित्र का अचानक से आ जाना बड़ा ही असहज प्रतीत हुआ। इसलिए मैंने तीसरी कक्षा की ही दूसरे विषयों की पुस्तकें जैसे गणित, आस-पास के शुरुआती पाठ टटोलने और कुछ कड़ियाँ ढूँढ़ने की कोशिश की जिनके माध्यम से दिल्ली के मानचित्र तक बच्चों को लेकर जाया जा सके। क्योंकि अगर मैं बच्चों को सीधे मानचित्र से शुरू कराती तो मुझे डर था कि कक्षा के आधे से ज़्यादा बच्चे उसको समझ नहीं पाते और अधिगम प्रक्रिया से अपने आपको डर के कारण दूर कर लेते।

गणित की पाठ्यपुस्तक को खंगालने के बाद वह कड़ी मुझे नज़र आने लगी थी। गणित की पुस्तक का प्रथम पाठ 'देखें किधर से' (where to look from) वस्तुओं को अलग-अलग कोणों से देखकर उसकी तस्वीर बनाने पर आधारित है। यानी कि एक कार को उसके सामने, साइड से तथा ऊपर से देखने पर दिखने वाली अलग–अलग छवियाँ/आकृतियाँ। इसी संकल्पना को आधार बनाकर कक्षा में कई वस्तुओं जैसे - पानी की बोतल, किताब, डस्टर, खिलौना, कुर्सी आदि को अलग-अलग कोणों से देखकर (visualise) और बाद में बिना देखे परन्तु कल्पना (imagine) करके तस्वीर बनाने का अवसर बच्चों को दिया गया। इसके उपरान्त बच्चों के सामने यह प्रश्न रखा -

"अगर आपके पंख लग जाएँ और आप कक्षा के ठीक ऊपर हों तो आपको अपनी कक्षा कैसी नज़र आएगी?"

मैं इस प्रश्न को देने से पहले बहुत आत्मविश्वास महसूस नहीं कर रही थी। कहीं-न-कहीं एक शंका थी कि कहीं यह एक बड़ी छलाँग तो नहीं। मैं वस्तुओं के अलग-अलग कोणों से चित्र बनवाने से लेकर सीधे कक्षा का नक़्शा बनवाने के बीच, इसी प्रक्रिया में इन दोनों के बीच में होने वाली कोई छूटी हुई गतिविधि खोजने का प्रयास कर रही थी। परन्तु ऐसी कोई गतिविधि समझ नहीं आ रही थी। इसी असमंजसता को समझते हुए मैंने अपने लिए कुछ बिन्दु बनाए जैसे - कक्षा के नक़्शे के लिए पहले कक्षा की बाहरी आकृति (आयत) से शुरुआत करना। फिर जो मुख्य चीज़ें हैं जैसे- दरवाज़े, खिड़कियाँ, अलमारी, ब्लैकबोर्ड व उनके नक़्शे में स्थान (position/location) पर चर्चा करना और अन्त में छोटी-छोटी चीज़ें जैसे - बिजली का बोर्ड, कूड़ादान, बच्चों के बैठने की डैस्क तथा उस समय उन डैस्क पर बैठे बच्चे नक़्शे में चित्रित करना।

इसी शृंखला में मैंने यह गतिविधि कक्षा में कराई। बच्चों ने मेरी शंका के विपरीत बहुत जल्दी और आसानी से कक्षा की आकृति बतला दी जो कि आयत थी। हम स्तर-दर-स्तर बढ़ रहे थे। बच्चों के विचार (ideas) तथा चर्चा को साथ-ही-साथ ब्लैकबोर्ड पर समाहित किया जा रहा था। जिससे बच्चे नक़्शा व नक़्शे पर चित्रित वस्तुओं की स्थिति (location) को भली-भाँति समझ सकें। धीरे–धीरे कक्षा की सभी वस्तुओं को नक़्शे में इंगित किया गया। बच्चों को सबसे ज़्यादा मज़ा तब आया जब उन्हें एक-एक करके नक़्शे में इंगित किया गया। बाद में भी वे बार-बार बोर्ड पर जाकर मुझे व अपने साथियों को बता रहे थे कि वे इस नक़्शे में कहाँ हैं। अन्त में मैंने उनसे अपनी स्थिति (location) पूछी, जब मैं बोर्ड के पास खड़ी होकर नक़्शा बना रही थी जो उन्होंने भली-भाँति बता दी। इसके बाद बच्चों ने बोर्ड पर बना कक्षा का नक़्शा अपनी-अपनी कॉपियों में बनाया और अपने आप को उस नक़्शे में हाईलाइट किया।

आज का दिन मैंने यहीं पर समाप्त करना सही समझा क्योंकि बच्चों में कक्षा के नक़्शे को लेकर एक उत्साह एवं ख़ुशी पूर्ण

रूप से नज़र आ रही थी। साथ ही कक्षा के नक़्शे के साथ उनको एक दिन बिताने देने से उन्हें उपयुक्त समय मिलता कि वे नक़्शे व नक़्शा बनाने की पूरी प्रक्रिया को आत्मसात कर सकें।

अगले दिन हमने नक़्शे पर फिर से चर्चा की तो एक बच्चे ने पूछा कि मैम हमने कक्षा में लगे चार्ट पेपर तो नक़्शे में बनाए ही नहीं? कक्षा के अन्य बच्चे भी इस प्रश्न से सहमत नज़र आ रहे थे और शायद उनके लिए भी ये प्रश्न उतना ही प्रासंगिक था। अब बच्चे हर वो चीज़ या वस्तु नक़्शे में प्रदर्शित करना चाहते थे जो भी उनकी कक्षा में उपस्थित थी। यहाँ से मुझे लगा कि यह उचित समय है इस बात पर चर्चा करने का कि नक़्शे व तस्वीर में क्या अन्तर है तथा नक़्शे का उद्देश्य होता क्या है। वैसे मैंने पहले से इस बारे में बच्चों से बात करने की कोई पूर्वनियोजित योजना नहीं बनाई थी। शायद मैंने बच्चों की क्षमताओं को कम आँका, परन्तु मेरे लिए यह अति उल्लास का समय था कि बच्चे इस बारे में जानने के लिए तैयार लग रहे थे। इसलिए नक़्शे के उद्देश्य को मोटा-मोटा ऐसे स्पष्ट किया गया - "तस्वीर किसी जगह की सभी वस्तुओं को बिलकुल वैसे ही दिखाती है जैसी चीज़ें व्यवस्थित होती हैं बस आकार थोड़ा छोटा हो जाता है। इसमें हर एक छोटी-से-छोटी व बड़ी-से-बड़ी वस्तु दिखती है। नक़्शे में हम किसी जगह को दिखाते हैं तथा वहाँ की मुख्य locations, रास्ते व वस्तुओं को ही इंगित किया जाता है। अगर हम नक़्शे में हर एक वस्तु चित्रित करने लगे तो फिर नक़्शे व तस्वीर या चित्र में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा।" इसके बाद भी मुझे लगा कि मेरा स्पष्टीकरण बच्चों तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँचा है इसलिए मैंने उनसे पूछा, "अगर स्कूल के मुख्य द्वार से आपको अपनी कक्षा तक आने के लिए किसी को रास्ता बताना पड़े तो कैसे बताओगे?" इस पर एक बच्ची ने जवाब दिया, "उनको कहेंगे हॉल के बगल में जो सीढ़ी है उससे ऊपर चढ़ जाओ फिर एक क्लास छोड़ के आगे वाली क्लास हमारी है।" इसी को आधार बनाकर मैंने कहा कि क्या जब आपने रास्ता बताया तो रास्ते में आने वाली सारी वस्तुओं के बारे में बताने की ज़रूरत पड़ी जैसे- रास्ते में पड़ने वाले चार्ट आदि? इस पर बच्चों का जवाब था नहीं। बच्चे अब नक़्शे का अर्थ समझने लगे थे।

अब अगला क़दम था विद्यालय का नक़्शा जिसके लिए हमारी पूरी कक्षा के बच्चों ने विद्यालय का भ्रमण किया। हमने ग्राउण्ड फ्लोर की सभी कक्षाएँ, टॉयलेट, प्रयोगशाला आदि देखीं। मुख्य रूप से मैंने विद्यालय के पीछे की दीवार पर बच्चों का ध्यान आकर्षित किया क्योंकि हमारे विद्यालय की आकृति आयताकार न होकर एक चतुर्भुज की भाँति है जिसकी तीन साइड तो एकदम सीधी हैं परन्तु सबसे पीछे की दीवार टेढ़ी है एक trapezium की भाँति। भ्रमण करने के बाद हम कक्षा में आए और फिर चर्चा–विमर्श करते हुए, जिस प्रक्रिया के अनुसार कक्षा का नक़्शा बनाया था ठीक उसी प्रक्रिया के द्वारा विद्यालय का नक़्शा उकेरा गया। इस बार मुझे नक़्शा बनाते समय दूरी तथा दीवारों की लम्बाई के अनुपात को बरकरार रखने में थोड़ी समस्या आ रही थी, क्योंकि नक़्शा एक बड़ी जगह का था। मेरी पूरी कोशिश थी कि दीवारों की लम्बाई व कक्षाओं के आकार व उनके बीच की दूरी का सही अनुपात रखूँ परन्तु हर बार यह सम्भव नहीं हो पा रहा था, किन्तु फिर भी हमने अपने विद्यालय का नक़्शा बनाया। जिसे बाद में बच्चों ने अपनी कॉपियों में भी बनाया।

इसके बाद का कार्य था कि बच्चे अपने घर का नक़्शा गृहकार्य के रूप में बनाकर लाएँ। इसको ज़मीनी स्तर पर समझाने के लिए मैंने सैम्पल के तौर पर अपने घर के ग्राउण्ड फ्लोर तथा फर्स्ट फ्लोर का नक़्शा बनाकर समझाने की कोशिश की कि सामान को घर के नक़्शे में किस प्रकार इंगित करना है। अन्त में बच्चों को अपने घर का नक़्शा बनाकर लाने को कहा।

कक्षा के शत-प्रतिशत तो नहीं परन्तु काफी बच्चे अपने घर का नक़्शा बनाकर लाए। कुछ नक़्शे बेतरतीब-से नज़र आ रहे थे परन्तु जब बच्चों ने अपने-अपने नक़्शों के बारे में बताना आरम्भ किया तो बेतरतीब-से दिखने वाले नक़्शे एक सुन्दर व स्पष्ट रूप धारण करने लगे थे। इसके बाद 'मेरी दिल्ली' के पाठ एक में दिया गया दिल्ली का नक़्शा देखा गया। मुझे खुशी इस बात की थी कि बच्चे अब दिल्ली के नक़्शे को समझने का प्रयास कर पा रहे थे और उसके अर्थ को समझ पा रहे थे।

इस अनुभव के दौरान पैदा हुए कुछ प्रश्न अभी तक मेरे मस्तिष्क में कौंध रहे हैं। जैसे कि तीसरी कक्षा में 'मेरी दिल्ली' के प्रथम पाठ में ही दिल्ली का नक़्शा देना क्यों ज़रूरी था? क्या यह बच्चों की आयु तथा संज्ञानात्मक (cognitive) परिपक्वता पर खरा उतरता है या नहीं? जितना मैंने पढ़ा है व मेरा अनुभव है तीसरी कक्षा में प्रवेश करने वाला बच्चा 7-8 वर्ष का होता है, जो पियाजे द्वारा सुझाए गए विकास के स्तरों में concrete operational स्तर पर आता है। इस स्तर का बच्चा ठोस (tangible/concrete) वस्तुओं व अनुभवों से ज्ञान का निर्माण करता है। इस आयु वर्ग में दिल्ली का नक़्शा एक अमूर्त (abstract) चिन्तन व संज्ञान की माँग करता है जिसके लिए 7-8 वर्ष का बच्चा तैयार नहीं होता।

'मेरी दिल्ली' पाठ्यपुस्तक में दिल्ली के नक़्शे के अलावा और भी बहुत-सी समस्याएँ देखने को मिलीं, जैसे - भाषा की। हिन्दी व अँग्रेज़ी दोनों ही माध्यमों की पुस्तकों में बहुत ही जटिल व कठिन शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण स्वरूप पाठ 2 में "inhabitants of Delhi; knowledge of constructing the houses with concrete; till the nail stays, the dynasty will stand" जैसे phrases के

साथ प्राचीन तथ्यों (ancient facts) के नाम पर इतिहास के कई महान राजाओं व योद्धाओं के बारे में खूब सारी जानकारी चन्द पन्नों में बिना किसी सन्दर्भ के उड़ेली हुई है।

तीसरी कक्षा की अन्य एन. सी. ई. आर. टी. की पाठ्यपुस्तकों से तुलना करें तो एस. सी. ई. आर. टी. की 'मेरी दिल्ली' काफ़ी रूखी, कठिन व बच्चों को खोजबीन (explore) करने एवं सोचने के कम मौके प्रदान करती है। समूची पुस्तक में सभी पाठ एक ही पैटर्न पर लिखे गए हैं जिसमें पहले काफ़ी सारी लिखित जानकारी और उसके बाद उस जानकारी से सम्बन्धित प्रश्न दिए गए हैं। कुछ प्रश्नों को छोड़ दिया जाए तो अधिकतर प्रश्न लिखित जानकारी से ही उत्तर की हूबहू नकल की अपेक्षा रखते हैं। बच्चों के करने के लिए गतिविधियों की कमी नज़र आती है। ऐसे में बच्चों की पुस्तक के साथ अन्त:क्रिया बहुत सीमित रूप ले लेती है।

सोचने की बात यह है कि क्या हमारे पास संसाधनों के नाम पर

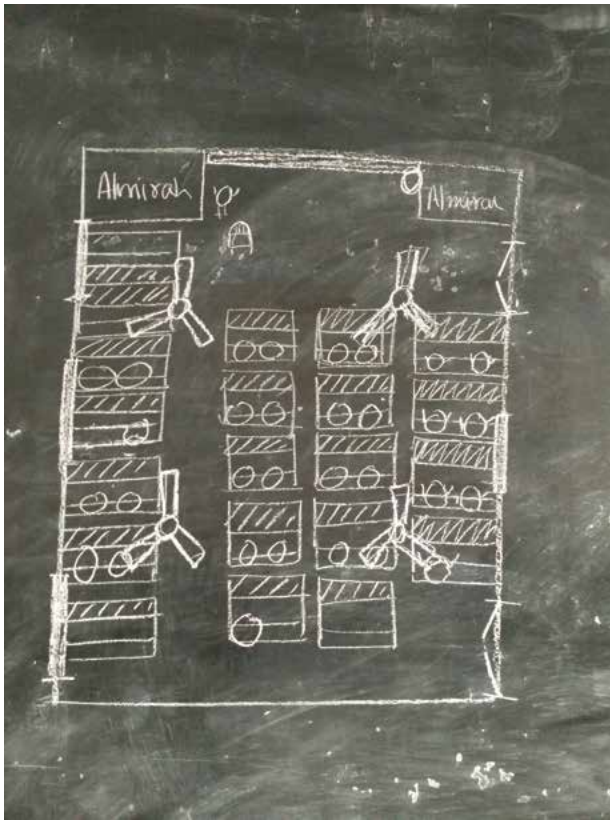


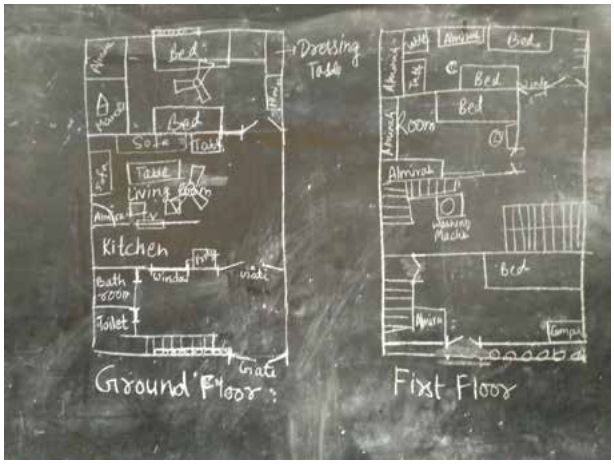


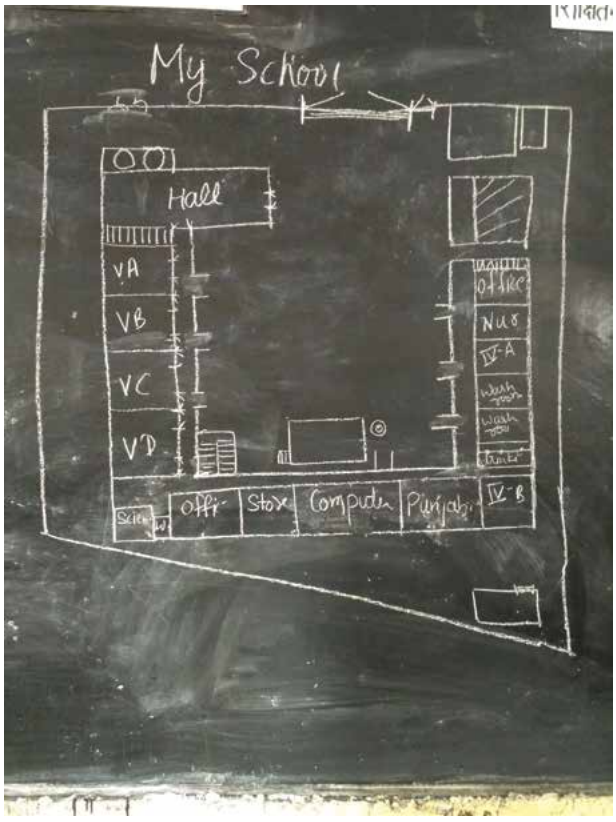

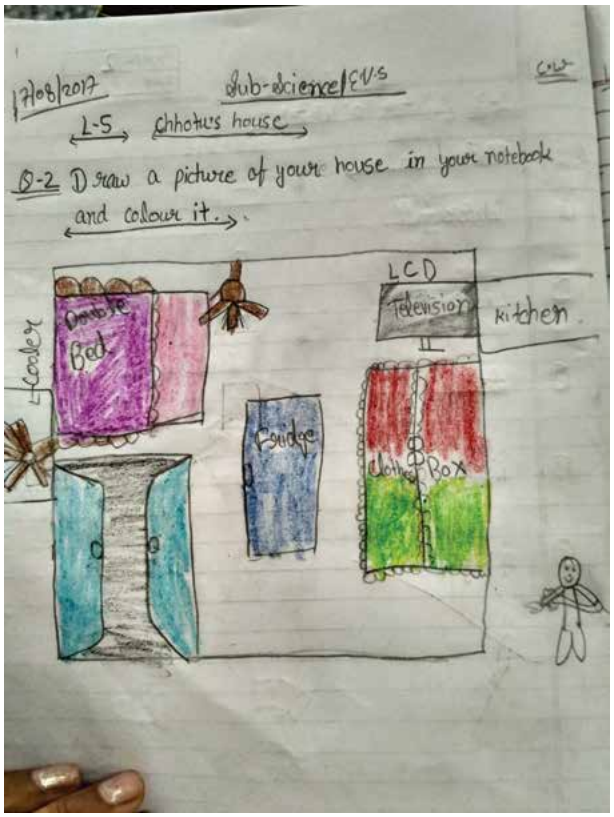


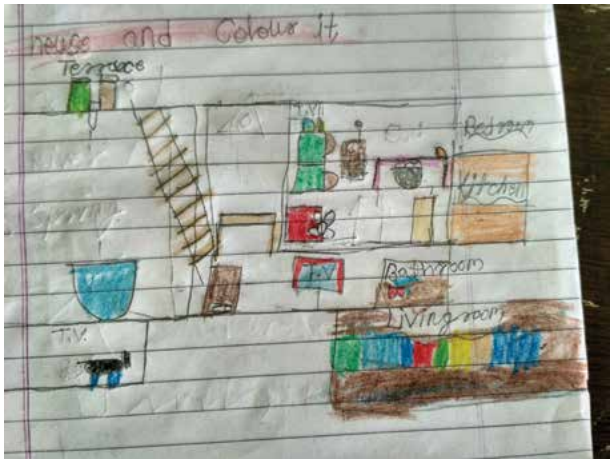


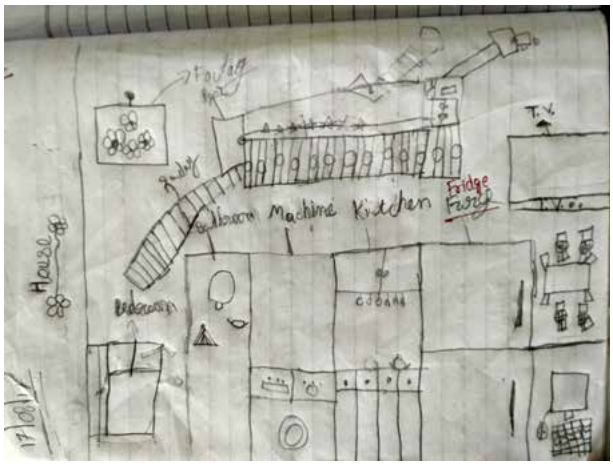


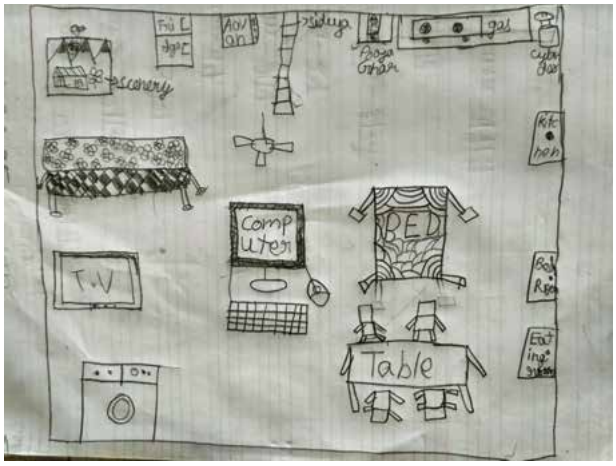

पाठ्यपुस्तकों के अलावा और कोई बेहतर विकल्प उपलब्ध हैं? क्योंकि एनसीएफ (2005) के अनुसार पाठ्यपुस्तक सिर्फ़ एक संसाधन है और अध्यापक स्वतंत्र है पाठ्यपुस्तक से बाहर के संसाधन प्रयोग करने के लिए। परन्तु यह पूरा मामला विकल्पों के उपलब्ध होने पर अटक जाता है विशेषकर सरकारी विद्यालयों में।

**रंजना सिंह** पिछले 9 वर्षों से प्रारम्भिक कक्षाओं में पढ़ा रही हैं। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय से एम.फिल. कर रही हैं। कक्षा की गतिविधियाँ और प्रक्रियाएँ उन्हें शिक्षाशास्त्रीय मुद्दों पर लिखने के लिए प्रेरित करती हैं। उनसे ranjana852000@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

# विचारों और अवधारणाओं को संस्थागत रूप देना

अनिल अंगडिकी

जब हम किसी भी कार्यप्रणाली का कोई उदाहरण देखते हैं तो यह बात साफ़ हो जाती है कि हमें उसे सुधारने, बदलने या छोड़ने के बारे में नए-नए विचार मिलते हैं। मैं शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष रूप से मुख्य धारा की स्कूल शिक्षा के क्षेत्र में अपने विचारों को एकत्र करने की कोशिश कर रहा हूँ।

बच्चों के लिए सीखने का माहौल बनाने के लिए इस तंत्र के प्रमुख हितधारक शिक्षक हैं। उन्हें भी स्वयं या अपने अधिकारियों से कार्यान्वयन के लिए कई विचार मिलते हैं। लेकिन जब कोई पेशेवर व्यक्ति इन विचारों को शिक्षा तंत्र में संस्थागत रूप देने की कोशिश करता है तो कई चुनौतियाँ सामने आती हैं। मैं अपने अनुभव से कुछ उदाहरण साझा कर रहा हूँ।

जब हमने अपने स्कूल में स्वतंत्रता के साथ ज़िम्मेदारी लाने की बात सोची तो पहले तो हम काफ़ी उलझन में पड़ गए। हमारा संगठन (जहाँ मैं कार्यरत हूँ) एक ऐसी संस्कृति में विश्वास करता है जहाँ बच्चे मुक्त, निडर और निष्पक्ष वातावरण का आनन्द उठाएँ, जो बच्चों और शिक्षकों के बीच एक सच्चा सम्बन्ध स्थापित करने में प्रभावी हो सके और जहाँ बच्चों को बोलने/सवाल पूछने की स्वतंत्रता मिल सके ताकि वे किसी भी विषयवस्तु के बारे में तर्कसंगत रूप से सोच सकें। सुनने में तो इस तरह के विचार अच्छे लगते हैं लेकिन अन्य संगठनों में हमारे पिछले अनुभव इससे अलग थे। हमारे वर्तमान स्कूल के बच्चे छोटे-छोटे गाँवों में रहते हैं और इनमें से कई छोटे बच्चे तो ऐसे घरों से आते हैं जहाँ उनकी जिज्ञासा और पूछताछ का जवाब थप्पड़ से दिया जाता है। इसलिए स्कूल के मुक्त व निडर वातावरण में समय बिताना उन्हें अच्छा लगता है।

हम अपने संगठन के सहायक तंत्र को धन्यवाद देना चाहेंगे क्योंकि वे हमसे कक्षा प्रबन्धन सम्बन्धी चुनौतियों के बारे में और शिक्षकों के सुगमकर्ता के रूप में कार्य करने के बारे में नियमित रूप से बातचीत करते रहते हैं। इसी वजह से हमने नियम-विनियम बनाने की प्रक्रिया में बच्चों की सहभागिता के बारे में सोचना शुरू किया और व्यवहार सम्बन्धित उनकी समस्याओं को कम करने के लिहाज से उनसे इस बारे में नियमित रूप से चर्चा भी की। बेशक़, हमारे इन विचारों (जो कई स्कूलों में व्यवहार में लाए जाने लगे थे) के परिणामस्वरूप हमारी कुछ मान्यताएँ स्थापित होने लगीं लेकिन इसके कारण एक चुनौती और उभरकर सामने आई : बच्चों के माता-पिता या अभिभावक यह समझने लगे कि हम बच्चों को बिगाड़ रहे हैं क्योंकि हम उनके अनुचित व्यवहार के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं करते थे तथा इसके लिए वे हमें दोष देने लगे। उनके लिए यह समझना कठिन था कि समस्याओं के समाधान के लिए बातचीत का सहारा भी लिया जा सकता है विशेष रूप से बच्चों के मामले में।

हमारे समक्ष कुछ उदाहरण ऐसे भी आए जिनमें हमने देखा कि स्कूल में बच्चे अपनी ज़िम्मेदारी की भावना को आत्मसात नहीं कर पा रहे। तब हम कुछ गृहीत विचारों के बारे में सोचने लगे जैसे बच्चों की समितियाँ गठित करना। पहले हमने शिक्षकों की साप्ताहिक बैठक, जिसमें हम अपने सरोकार साझा करते हैं, में इस विचार पर चर्चा की और फिर इस विचार के साथ बच्चों के पास गए। यद्यपि उनमें से कुछ बच्चे समझ नहीं पाए कि हम उनसे क्या कहने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन फिर भी ऐसा करने के लिए तैयार हो गए क्योंकि बच्चों को नई चीज़ें आम तौर पर आकर्षित करती हैं। मुझे लगता है कि समितियों में पूरे स्कूल को शामिल करना एक सकारात्मक क़दम था क्योंकि इससे स्कूल का प्रत्येक सदस्य (छोटा हो या बड़ा) कम-से-कम किसी एक समिति के कार्यों में भाग ले सका। कुल आठ समितियों का गठन किया गया और हर समिति की भूमिकाओं और ज़िम्मेदारियों को सदस्यों द्वारा नियत किया जाना था। समिति के सदस्य के रूप में प्रत्येक शिक्षक ने इस कार्य में योगदान देना शुरू कर दिया। पहले साल के दौरान बच्चों और शिक्षकों को साथ में लाकर कार्य करना मुश्किल हुआ क्योंकि हमें खुद भी स्पष्ट रूप से पता नहीं था कि क्या करना है और कैसे करना है। मुझे लगता है कि दूसरे के विचारों के अनुरूप कार्य करना कठिन होता है विशेष रूप से तब जब उस कार्य का बृहत उद्देश्य धीरे-धीरे प्राप्त होता है। कार्यों को प्रभावी ढंग से करने की रणनीतियों पर चर्चा करने के लिए समितियों को मिलकर कुछ और बैठकें करने का सुझाव दिया गया।

अधिकांश बच्चों में शुरू का उत्साह धीरे-धीरे कम होता नज़र आया। या तो उन्हें यह विचार ही उत्साहजनक नहीं लगा और या उन्हें निर्णायक भूमिका निभाने का मौक़ा नहीं मिला। जो सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे वे खुद-ब-खुद कार्य करने लगे और नित्य किए जाने वाले कार्य निपटाते रहे। ज़िम्मेदारी के

प्रत्यायोजन का विचार उत्पन्न करना बहुत मुश्किल था। पहले वर्ष के दौरान एक या दो समितियों में बच्चों को भूमिका देने की चुनौती पर सभी के साथ चर्चा की गई और अब हर माह नई समितियों में सदस्यों के आवर्तन की प्रथा लागू की गई है, और दो नई समितियाँ भी गठित की गई हैं। सभी कक्षाओं और शिक्षकों के सदस्यों के साथ दस समूह गठित किए गए और एक समिति में कार्य करने के लिए समूह का चुनाव प्रार्थना सभा में पर्चियाँ डालकर किया गया। ऐसा करने से प्रत्येक बच्चे को एक साल में सभी समितियों में कार्य करने का अवसर मिलता है।

अब समिति की टीम बैठकों, ज़िम्मेदारी के प्रत्यायोजन और बच्चों की अपनी भूमिका निभाने आदि के बारे में कुछ नियमितता आई है। अब स्टाफ के सदस्य मुद्दों और चुनौतियों के समाधान के लिए लगातार समिति के सदस्यों की सहायता करते हैं और इन बातों को प्रार्थना सभा में प्रस्तुत किया जाता है। इससे यह विचार एक रचनात्मक दिशा में आगे बढ़ रहा है। इस प्रकार स्कूल की समितियाँ स्कूल के दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलापों जैसे मध्याह्न भोजन, स्कूल की प्रार्थना सभा, स्कूल का बग़ीचा और उसका रखरखाव, स्कूल की सफ़ाई, स्कूल और कक्षा के पुस्तकालय का रखरखाव, स्कूल के कार्यक्रमों और आयोजनों की रूपरेखा बनाना और उनका प्रबन्धन करना आदि में आने वाली चुनौतियों का समाधान कर रही हैं। मैं इस बात का दावा नहीं कर रहा कि हमने पूरी तरह से सफलता प्राप्त कर ली है लेकिन यह विचार स्कूल संचालन के प्रबन्धन में साझा ज़िम्मेदारियों के विकास में धीरे-धीरे योगदान दे रहा है। हमने अग्रलिखित बातों में प्रगति होती देखी है - बच्चों द्वारा चर्चा के लिए बैठकों का आयोजन करना, सदस्यों के मध्य ज़िम्मेदारियाँ प्रत्यायोजित करना, अपनी समिति के लिए नियम बनाना, मुद्दों को पहचानकर उन्हें सबके सामने रखना, आवर्तन के आधार पर सभी सदस्यों को सभी समितियों में कार्य करने का अवसर देकर पदानुक्रम की भावना कम करना एवं स्कूल सम्बन्धी अभ्यासों और तंत्र के बारे में अपनी समझ बढ़ाना। कुछ क्षेत्रों पर हम अभी भी काम कर रहे हैं जैसे अपने और दूसरों के प्रति ज़िम्मेदारी की भावना विकसित करना, अपने घरों में बातचीत करने का वातावरण बनाने के लिए बच्चों के माता-पिता में जागरूकता पैदा करना, आदि।

मैं एक उदाहरण और साझा करना चाहता हूँ। मैंने छोटे बच्चों के साथ एक प्रयोग किया। जो कुछ विचारों/योजनाओं को पूरा करने में मेरी सफलता और विफलता से सम्बन्धित है (चूँकि मैंने पहले यह प्रयोग नहीं किया था)। पिछले दो-तीन सालों से हम बच्चों को पुस्तकालय से सम्बन्धित गतिविधियों के साथ जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं जिसके बारे में हमारे समूह में चर्चा भी हुई थी।

मैं यह सोच रहा था कि हम बच्चों में समाचार पत्र या पत्रिकाएँ पढ़ने की आदत कैसे डालें। तो इसके लिए मैंने चौथी कक्षा के बच्चों के सामने दैनिक समाचार पत्रों से कुछ रोचक समाचार पेश करने शुरू किए। जो समाचार उनके साथ साझा किए गए, उनमें से बच्चे दुर्घटनाओं और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से सम्बन्धित समाचार और रिपोर्ट सुनने में बहुत रुचि दिखाते थे। मैंने भाषा शिक्षक से इस बारे में चर्चा की और उन्होंने बच्चों से समाचार पत्रों में से कुछ उद्धरण लिखकर कक्षा में प्रदर्शित करने को कहा। इसे आवर्तन के आधार पर किया जाता था और कक्षा में इस पर थोड़ी चर्चा भी की जाती थी ताकि सभी विद्यार्थियों की भागीदारी हो सके। शुरू में तो बच्चे उद्धरण लिखने के लिए उत्सुक थे लेकिन धीरे-धीरे यह अभ्यास कमज़ोर पड़ने लगा। शायद इसका कारण यह हो कि कुछ बच्चों को पढ़ने और लिखने में दिक़्क़त होती थी या उद्धरण को कक्षा में प्रदर्शित करने के बाद वाली गतिविधि पर भली-भाँति ध्यान नहीं दिया जाता था। इसलिए मैंने सोचा कि समाचार पत्र की अवधारणा को व्यवहारिक रूप देने के लिए मुझे कुछ और करना चाहिए। जब भी मैं बच्चों से समाचार पत्र पढ़कर पढ़े गए समाचार को साझा करने के लिए कहता तो अक्सर ऐसा हो नहीं पाता था। क्योंकि उन्हें ऐसे उपयुक्त समाचार नहीं मिलते थे जिन्हें वे समझ सकते हों या जो उनके लिए दिलचस्प हों। इसलिए हमने सोचा कि अपने स्कूल का ही एक समाचार पत्र बनाया जाए जिसमें बच्चे स्कूल के सन्दर्भ में ही समाचार लिखें। लेकिन बच्चों को यह अवधारणा समझाना मेरे लिए मुश्किल था। यहाँ तक कि मिश्रित अधिगम स्तर वाले बच्चों के एक छोटे समूह के साथ समाचार पत्र शुरू करने की मेरी कोशिश नाकाम रही क्योंकि बच्चे मेरे विचारों को समझने में असमर्थ थे। फिर मैंने यह सोचकर इस विचार को त्याग दिया कि शायद ये बच्चे बहुत छोटे हैं और मेरी परिकल्पना को समझ नहीं पा रहे हैं।

इस साल मुझे चौथी कक्षा के उन्हीं बच्चों के पुस्तकालय के पीरियड मिले जो अब पाँचवीं कक्षा में हैं। तो मेरे मन में फिर वही पुराना विचार जागा कि बच्चों से समाचार पत्र वाला कार्य करवाना चाहिए। इसके लिए मैंने लगभग दो महीने तक कुछ क्रियाकलापों की योजना बनाई जिनमें, समाचार पत्रों से समाचार चुनना, उन्हें पढ़ना, कुछ पर चर्चा करना, समाचारों के अलावा अन्य जानकारियाँ एकत्र करना, बच्चों के छोटे समूह बनाकर पुराने समाचार पत्रों से रोचक और विविध विषयों वाले समाचारों को काटना, इन कतरनों से एक समाचार पत्र बनाना और उसे प्रदर्शित करना आदि, शामिल थे। धीरे-धीरे मैं उसी

बात पर आया कि 'क्या हम स्कूल का समाचार पत्र निकाल सकते हैं?' इस बार उन बच्चों के चेहरे पर इस काम को लेकर पिछली बार वाली अस्पष्टता नहीं थी। ये वही बच्चे थे जिन्हें मैं पहले अपनी बात समझाने में असफल रहा था। बच्चे ख़ुशी-ख़ुशी मेरी बात मान गए और हमने पाँच समूह बनाए और इस कार्य की प्रकृति और प्रयासों के बारे में सोचने लगे। चर्चा के दौरान मैंने दैनिक समाचार पत्र के बदले साप्ताहिक पत्र की बात कही क्योंकि हमारे स्कूल में प्रतिदिन समाचार जुटाना मुश्किल होता। इसलिए पहले समूह ने समाचार एकत्र करने शुरू किए जैसे कि अन्य कक्षा के बच्चों द्वारा लिखी गई कविताएँ/कहानियाँ और चित्र। इस बार मैंने इस बात का ध्यान रखा कि इस पहल को बीच में न छोड़ूँ और इसलिए मैं प्रतिदिन टीम के कार्यों की प्रगति देखता और उन्हें प्रेरित करता। अन्त में मेरे और मेरी टीम के समक्ष वह हर्षपूर्ण क्षण आया जब हम अपने स्कूल का पहला साप्ताहिक पत्र निकाला जिसका नाम था '*शाला वारा पत्रिके* ' (स्कूल साप्ताहिक पत्र) और यह नाम भी बच्चों ने ही सुझाया था।

मैं यहाँ अपनी सफलता का दावा नहीं कर रहा क्योंकि समाचार पत्र के बड़े हिस्से में चित्र/पेंटिंग, कविताएँ/कहानियाँ थीं और एक कोने में समाचार दिए गए थे। लेकिन इस पहल से मुझे यह विश्वास हुआ कि बच्चे धीरे-धीरे विचारों को समझ सकते हैं। सभी समूहों ने नियमित रूप से साप्ताहिक पत्र निकाले और उन्हें स्कूल की प्रार्थना सभा में इसके विमोचन का अवसर भी मिला। अब अन्य कक्षाओं के बच्चों ने भी स्कूल का साप्ताहिक पत्र निकालने में रुचि दिखाई। मैंने उनकी बात मान ली और कक्षा छह के बच्चों ने साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ कर दिया है (जिसमें अधिक समाचार हैं और जिसके साथ अधिक शिक्षक भी जुड़ गए हैं)। मैं व्यक्तिगत तौर पर प्रसन्न हूँ कि धीरे-धीरे समाचार पत्र की अवधारणा संस्था के साथ समेकित हो रही है। अग्रणी समूह के विद्यार्थियों ने वर्तमान साप्ताहिक पत्र में अपनी भूमिका के बारे में पूछा तो मैंने उनसे कहा कि वे कार्यरत समूह को और अधिक समाचार/लेख देकर उनकी मदद कर सकते हैं। लेकिन अभी भी मैं पूरी तरह से खुश नहीं हूँ। मेरा वह मूल विचार, कि बच्चों को समाचार पत्र पढ़ने की ओर प्रवृत्त करना है, साकार नहीं हो पाया है क्योंकि जिन बच्चों के साथ मैं काम कर रहा हूँ उनमें से अधिकांश समाचार पत्र नहीं पढ़ते। मेरा प्रयास जारी है तथा मैं कुछ और क्रियाकलापों की योजना बना रहा हूँ।

मुझे अपने या दूसरों के विचारों को साकार करने से सम्बन्धित कई अनुभव हुए हैं जो आंशिक रूप से सफल या असफल रहे हैं और इसके अनेक कारण हैं। मुझे लगता है कि कुछ कारण इस प्रकार हैं :

1. *कार्य को अंजाम देने वाले लोगों का इस विचार के पीछे के औचित्य को न समझ पाना/हितधारकों के साथ स्पष्ट रूप से बातचीत और नियमित रूप से अनुवर्ती कार्रवाई का अभाव।*
2. *सन्दर्भीकरण न होना, विचार के बारे में उच्च अपेक्षाएँ व कठोर रवैया होना (यानी परिवर्तन के कम अवसर) अथवा खुलापन होना लेकिन विचारों की मौलिकता न खोना।*
3. *अगर किसी विचार को भली प्रकार से समझा न जाए/व्यक्ति द्वारा उसे अपनाया न जाए तो वह संस्थागत रूप नहीं ले सकता।*
4. *जब तक हम किसी चुनौती को समझ नहीं जाते या अपने कार्य में उस चुनौती का सामना नहीं करते (जिसका सामना दूसरों ने किया है) तब तक हम उसे गम्भीरता के साथ नहीं निपटाते।*
5. *पूरे मामले पर स्पष्टता ज़रूरी है। हमें निष्पादन से पहले, उसके दौरान और उसके बाद के परिणामों को समझ लेना चाहिए।*

शिक्षा के क्षेत्र में एक सुगमकर्ता के रूप में शिक्षक के कार्य में अनेक प्रयोग होते रहते हैं और शिक्षक उन सभी विचारों के साथ संघर्ष करते रहते हैं जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा जैसे मार्गदर्शी दस्तावेजों, शिक्षाविदों द्वारा बताए गए शिक्षा के सिद्धान्तों या किसी स्कूल विशेष के विचारों में दिए गए होते हैं। इन्हें संस्थागत रूप देते समय शिक्षक को अपनी ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए, उनमें अपने विचार जोड़ने चाहिए ताकि सीखने में वृद्धि हो। अगर इन्हें चिन्तन डायरियों में प्रलेखित किया जाए तो वे हमारे शिक्षा तंत्र की गुणवत्ता में बहुत बड़ा योगदान दे सकते हैं।

**अनिल अंगडिकी** यादगीर,कर्नाटक में अज़ीम प्रेमजी स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं। वे पिछले पाँच वर्षों से इस स्कूल में कार्यरत हैं। उनका कहना है कि यहाँ उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अर्थ और उद्देश्य के बारे में सोचने का अवसर मिला। वे एम.एससी. और बी.एड. की डिग्री प्राप्त कर चुके हैं और विगत दिनों में वे प्री-यूनिवर्सिटी कॉलेज के विद्यार्थियों के साथ कार्यरत थे। उनसे anil.angadiki@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

# क्ले आर्ट

चेतन पाटली

यदि हम औपचारिक भारतीय स्कूली शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में स्वयं से यह सवाल पूछें कि हम प्रमुख विषयों पर ज़्यादा ध्यान देते हैं या सह-पाठ्यचर्या वाले क्षेत्रों पर। तो इसका सीधा-सा जवाब होगा प्रमुख विषयों पर, जबकि सह-पाठ्यचर्या के क्षेत्रों में हम सतही तौर पर कार्य करते हैं। लेकिन यह सह-पाठ्यचर्या के विषय भी बच्चे के समग्र विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस सन्दर्भ में, कला सह-पाठ्यचर्या का एक ऐसा क्षेत्र है जिसे स्कूल में प्रमुख विषयों के साथ-साथ सुदृढ़ करने और व्यवहार में लाए जाने की आवश्यकता है। साथ ही इसके लिए संरचित पाठ्यचर्या, डिज़ाइन और योजना तैयार करने की भी आवश्यकता है। अपनी भावनाओं, विचारों और कल्पनाओं को विभिन्न माध्यमों मसलन चित्रकला, पेंटिंग, मूर्तिकला, संगीत, नृत्य, नाटक आदि के द्वारा व्यक्त करने के लिए कला एक प्रभावी साधन है।

विगत चार वर्षों से हमारे स्कूल में कला के विभिन्न रूपों को व्यवहार में लाया जा रहा है और इसके लिए बाक़ायदा हमारे स्कूल की समय-सारणी के अन्तर्गत समय भी प्रदान किया गया है। हालाँकि 2016-2017 के शैक्षिक वर्ष में हम सभी शिक्षकों ने महसूस किया कि हमें कला के किसी एक रूप को बुनियादी स्तर से लेकर अगले स्तर तक आजमाना चाहिए। हम सभी ने एक साथ बैठकर इस बारे में विमर्श किया कि हम कला के किस रूप को आजमा सकते हैं और नए सिरे से उसे व्यवहार में ला सकते हैं। इस विमर्श में दो विचार प्रमुख रूप से उभरकर आए। एक बढ़ईगिरी का और दूसरा क्ले मॉडलिंग का। शिक्षण में सहायता के लिए स्रोत व्यक्तियों व संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर हमने क्ले मॉडलिंग का चयन किया।

उस समय तक मैं प्रमुख विषयों और कला पाठ्यक्रम के कुछ हिस्सों मसलन चित्रकला और पेंटिंग के साथ मुख्य रूप से कार्य कर रहा था। हालाँकि कला शिक्षण की कोई योग्यता या अनुभव मेरे पास नहीं था लेकिन मेरी दिलचस्पी थी इसमें।

कला क्या है और शिक्षा में इसकी क्या भूमिका है, क्ले मॉडलिंग क्या है और इसे कक्षा में किस तरह पढ़ाया जा सकता है आदि के बारे में अपने ज्ञान व समझ को बढ़ाने के लिए मैंने कला के नए पाठ्यक्रम पर कार्य करना शुरू किया। फिर मैंने एक ऐसी समयसारिणी - जिसमें मेरी कला की कक्षाएँ जिनमें मैं क्ले मॉडलिंग की गतिविधियों, प्रकारों और उनकी आवृत्ति को शामिल कर सकूँ, की योजना बनाई।

वास्तविक कक्षाएँ शुरू करने से पहले हमें प्रक्रिया के लिए उचित प्रकार की मिट्टी की आवश्यकता थी। तो अपनी अन्य तैयारियों के साथ ही, मैंने नइकल के स्थानीय कुम्हार हनमन्तप्पा से मिट्टी के प्रकार, उसकी उपलब्धता, क्ले कैसे तैयार करें व अन्य सम्बन्धित तथ्यों के बारे में बातचीत की। उन्होंने हमें यादगीर के निकट मुद्रल गाँव से मिट्टी लाने का सुझाव दिया। तब हमने मिट्टी को एकत्र करने के लिए बतौर स्कूल मुद्रल पंचायत के सदस्यों से सम्पर्क किया और हमें मिट्टी लेने के लिए आवश्यकता अनुमति मिल गई। इसके बाद पहली कक्षा फ़ील्ड विजिट के रूप में व्यवस्थित की गई जिसमें मिट्टी को एकत्र करने की योजना बनाई गई व बच्चों के साथ विजिट के उद्देश्य और इस दौरान बरती जाने वाली सावधानियों पर चर्चा की गई। फ़ील्ड विजिट का उद्देश्य बच्चों को यह समझाना था कि सभी मिट्टी मॉडलिंग के लिए उपयुक्त नहीं होतीं और इसलिए इनसे वस्तुएँ निर्मित करना इतना आसान नहीं होता।

तयशुदा दिन कक्षा पाँच के सभी बच्चे तीन शिक्षकों के साथ मिट्टी एकत्र करने मुद्रल गए। हालाँकि जो कुम्हार इस प्रक्रिया में हमारी मदद करने के लिए आने को सहमत हुए थे कुछ व्यक्तिगत कारणों की वजह से वह नहीं आ सके। तो मैंने उनके दिए निर्देशों के अनुसार क्ले तैयार करना शुरू कर दिया। मिट्टी को बच्चों ने तार की जाली से साफ किया और फिर एक विशिष्ट मात्रा में पानी मिलाकर उसे मॉडलिंग के लिए तैयार किया। दो-तीन दिनों के बाद मिट्टी मॉडलिंग के लिए तैयार हो गई थी।

फिर हमने चीज़ें बनाना शुरू किया। हमारे सामने विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ आईं और हमने उनके बारे में कक्षा में बच्चों के साथ विमर्श किया तो कई विचार सामने आए। इस सबके बाद बच्चों ने और मैंने हमारे द्वारा अपनाए गए तरीक़ों पर चर्चा की। उनकी कुछ प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार हैं :

1. *'जब हम चौथी कक्षा में थे हमने कभी मिट्टी के साथ काम नहीं किया था तो जब हम मिट्टी एकत्र करने जा रहे थे मैं थोड़ा दुविधाग्रस्त था कि हम यह कैसे करने वाले हैं। लेकिन धीरे-धीरे जब हमने कार्य करना शुरू किया तो मुझ में इसे करने का विश्वास आ गया।'*

2. *मिट्टी के काम को शुरू करने के पहले हम सिर्फ चित्रकारी, पेंटिंग और कक्षा के अन्दर किए जाने वाले क्राफ्ट के कुछ काम कर रहे थे जिन्हें करना अब उबाऊ होने लगा था। लेकिन कक्षा के बाहर किए जाने वाले इस काम से हमें ख़ुशी मिली और हमने अपने काम को पुस्तकालय में प्रदर्शित भी किया।'*

3. *'मिट्टी के साथ काम करने के शुरुआती दिनों में मैं कोई भी चीज़ बनाने में असमर्थ था। उस समय मैं शान्त होकर बैठ गया और मैंने कई चीज़ों के बारे में सोचा। फिर मैंने मिट्टी से उन्हें बनाने का प्रयास किया तो वो काफ़ी अच्छे-से बन गईं।'*

4. *'इस काम को करके मुझे बहुत ख़ुशी हुई क्योंकि हमने उस पूरी प्रक्रिया को करके देखा जिससे कुम्हार अपना काम करते हैं। और इस तरह हमने भी वही परिश्रम किया जो कुम्हार करते हैं।'*

5. *'अब तक हमने केवल आसान-सी चीज़ें बनाई हैं, यदि हमें कुम्हार का सहयोग मिल पाता तो हम कई और चीज़ें बना सकते थे।'*

एक सहायक के तौर पर मेरी सामने आने वाली चुनौतियाँ व इस दौरान मैंने जो भी सीखा वह निम्नानुसार है:

1. *स्रोत व्यक्ति (कुम्हार) की अनुपलब्धता के कारण कार्य प्रारम्भ करने में देरी हुई।*

2. *मिट्टी के गाढ़ेपन को बनाए रखना एक चुनौती थी। कभी मिट्टी बहुत गीली हो जाती तो कभी एकदम सूख जाती।*

3. *मेरे मन में यह सवाल था कि हम किस प्रकार की चीज़ें निर्मित कर सकते हैं।*

4. *जब मैंने चीज़ों के निर्माण के लिए बच्चों को विषय दिए तो मुझे इस बात की चिन्ता थी कि बच्चे किस प्रकार की कल्पनाएँ करेंगे व उसे किस तरह अभिव्यक्त करेंगे।*

5. *और अधिक प्रभावी ढंग से इसका अभ्यास करने के लिए हमें विशेषज्ञ की सहायता की आवश्यकता है।*

इस दौरान मैंने कई महत्त्वपूर्ण बातें सीखीं। इस बारे में मेरी कुछ टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं :

1. *इस प्रक्रिया ने मुझे मिट्टी तैयार करने के तरीक़ों की पहचान करने, विषय चुनने, चीज़ों को निर्मित करने के विभिन्न तरीक़े खोजने के लिए प्रेरित किया।*

2. *बच्चों ने अपने विचारों को त्रिविमीय रूपों में व्यक्त किया जबकि इसके पहले तक हम अपने को केवल द्विविमीय रूपों में अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रहे थे। और बच्चों ने यह कार्य बहुत ही अच्छे-से किया।*

3. *वस्तुओं को निर्मित करने के लिए विचारों व जानकारियों को एकत्र करने में प्रत्येक बच्चा शामिल था जिसके परिणामस्वरूप मिल-जुलकर कार्य किया गया।*

4. *बच्चे अपनी बनाई वस्तुओं व बनाने की प्रक्रिया को अपनाने लगे थे जिसकी वजह से उनमें जवाबदेही नज़र आ रही थी। हम बच्चों में प्रक्रिया को लेकर स्वामित्व का भाव देख पा रहे थे।*

5. *कुछ बच्चे अपनी बनाई चीज़ों से कहानियाँ बुन रहे थे।*

6. *बच्चे एक-दूसरे के कार्य की प्रशंसा करने में समर्थ थे।*

7. *जो बच्चे अभी तक चित्र बनाने या रंग भरने में हिचकते थे वे भी अपने हाथों से चीज़ें बनाने में दिलचस्पी दिखा रहे थे।*

8. *बच्चों की भागीदारी संतोषजनक थी।*

9. *बतौर सहायक इस कार्य के दौरान मैं कला के नए क्षेत्र को समझ पाया और इस नए रूप के बारे में कुछ नई योजनाएँ बनाने में समर्थ हो पाया।*

पूरी प्रक्रिया के दौरान हमारा उद्देश्य था - स्थिरता के साथ सभी बच्चों को कला के एक नए रूप में शामिल करना व

उससे अवगत कराना। इस प्रक्रिया में हमारा प्रमुख सिद्धान्त सोच-विचार करना व उसे अभिव्यक्त करना था न कि अन्तिम उत्पाद। मैंने यह भी बताया व सुनिश्चित किया कि प्रक्रिया के दौरान अच्छा या बुरा या किसी भी और तरह की कोई तुलना नहीं होगी।

हमें कला को सभी विषयों के अनिवार्य अंग के तौर पर देखना होगा। विषयों के अन्तर्गत भी कला के विभिन्न रूपों को इस्तेमाल करने की काफी गुंजाइश होती है। इससे हमें कला की कक्षाओं के अतिरिक्त भी कला कौशलों को विकसित करने में मदद मिलेगी। तो, इस प्रकार क्ले मॉडलिंग की यह यात्रा एक साल के लिए क्रियान्वित की गई। मैं इस योजना का व मेरा समर्थन करने, संसाधनों को जुटाने व वीडियो दस्तावेज़ीकरण करने में मदद करने के लिए अज़ीम प्रेमजी विद्यालय, यादगीर के प्रधानाध्यापक व अपने सहकर्मियों का आभार व्यक्त करना चाहूँगा।

**चेतन पाटली** वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विद्यालय यादगीर, कर्नाटक में बतौर शिक्षक कार्यरत हैं। उनसे chetan.patali@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** कविता तिवारी

# कक्षा अवलोकन

दीपक दीक्षित

शिक्षकगण कक्षा अवलोकनों को सदैव ही सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और एक शिक्षक होने के नाते मैं कक्षा अवलोकनकर्ता के अधिकार को भी समझता हूँ, चाहे वह सम्प्रेषित हो या प्रतीकात्मक। शिक्षक को लगता है कि अवलोकनकर्ता ऊँचाई पर बैठा हुआ एक ऐसा व्यक्ति है जो कक्षा की समाप्ति के बाद यह बताएगा कि कक्षा से सम्बन्धित मुद्दे क्या थे और उनका समाधान कैसे किया गया। एक शिक्षक के रूप में मैंने भी इन बातों को महसूस किया है और दूसरे लोग भी इस बात से सहमत होंगे कि कक्षा के अवलोकन को जिस तरीक़े से किया जाता है वह निरीक्षण अधिक और शिक्षक की मदद करने का साधन कम लगता है।

अज़ीम प्रेमजी स्कूल में कक्षा के अवलोकन का अर्थ एक अलग रूप में लिया गया है। यहाँ पर कक्षा के अवलोकन का अर्थ है शिक्षकों की मदद करना ताकि वे उन चीज़ों को जान सकें जिन्हें वे कक्षा में पढ़ाने के दौरान नहीं देख पाए थे। यहाँ कक्षा-अवलोकन का मतलब ग़लती खोजना नहीं है वरन कक्षा सम्बन्धी सूक्ष्म बातों को समझने में शिक्षक की सहायता करना है। इस प्रकार के कक्षा-अवलोकनों के लिए बहुत धैर्य और सोच-विचार की ज़रूरत होती है ताकि चुनौतियों को सीखने के अवसरों में बदला जा सके।

मैं कक्षा पाँच में था और पर्यावरण अध्ययन का पीरियड चल रहा था। शिक्षक तैयार थे क्योंकि उन्हें पहले ही अवलोकन योजना के बारे में बता दिया गया था। उस दिन का प्रकरण या टॉपिक था जल, जो सामान्य तो था पर साथ ही दिलचस्प भी था। तो प्रक्रिया के अनुसार मैंने सम्बन्धित शिक्षक के साथ चर्चा की और उन्होंने अपनी पाठ योजना मेरे साथ साझा की तथा संक्षेप में बताया कि वे उस पीरियड में क्या करने वाले थे। योजना स्पष्ट थी - जिसमें कुछ क्रियाकलाप थे, कुछ चर्चाएँ थीं, कुछ लिखित कार्य और एक संक्षिप्त व छोटी समूह चर्चा भी थी। कुल मिलाकर पाठ योजना भली प्रकार से सन्तुलित प्रतीत हुई। हम दोनों साथ में कक्षा के अन्दर गए।

शिक्षक ने पुनरावृत्ति के साथ पढ़ाना शुरू किया जिसमें विद्यार्थियों की भागीदारी काफ़ी अच्छी रही। अब शिक्षक अपनी कार्यसूची के अनुसार 'सुरक्षित पेयजल' पर कुछ गतिविधि करवाने के लिए तैयार हुए। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों में इस बात की जागरूकता लाना था कि पानी कैसे प्रदूषित होता है और प्रदूषण के बाद पीने के लिए असुरक्षित हो जाता है। गतिविधि के अनुसार उन्हें एक पारदर्शी गिलास में पानी लेकर उसमें मिट्टी मिलाना था और विद्यार्थियों से पूछना था कि क्या यह पानी पीने के लायक है? अपेक्षित उत्तर था 'नहीं' और तब शिक्षक अपनी बात आगे बढ़ाते कि जब भूजल/नल के पानी में अशुद्धियाँ मिल जाती हैं तो वह पानी पीने के लिए असुरक्षित हो जाता है।

इस गतिविधि को शुरू करते हुए शिक्षक ने एक गिलास लिया, उसमें पानी की बोतल से थोड़ा पानी डाला और एक विद्यार्थी से कहा कि वह इस पानी का एक घूँट पिए। विद्यार्थी ने ऐसा ही किया। जिससे यह बात स्पष्ट हुई कि यह पानी पीने के लिए ठीक है। अब शिक्षक ने उस पानी में चॉक का चूरा मिलाया और पूछा कि क्या अब इस पानी को कोई पी सकता है? अन्दाजा तो यही था कि इस सवाल का जवाब सभी विद्यार्थी एक ज़ोरदार 'नहीं' से देंगे लेकिन...वहाँ तो चुप्पी छा गई... क्यों? क्या हुआ? शिक्षक ने फिर पूछा कि क्या कोई इसे पी सकता है?

'जी, हाँ', एक लड़का बोला।

यह बात शिक्षक के लिए चुनौती थी। 'मैं इसे पी सकता हूँ', उसने कहा, 'लेकिन आपको यह गिलास बिना हिलाए-डुलाए कुछ समय तक यूँही रखना होगा।'

मैं कक्षा में एक अवलोकनकर्ता था और मुझे भी पानी में चॉक पाउडर की घुलनशीलता के बारे में पता नहीं था क्योंकि मैंने कभी इसका परीक्षण नहीं किया था। मुझे ग़लतफ़हमी थी कि चॉक पाउडर पानी में घुल जाएगा। (अब मैं इसे ग़लतफ़हमी कह रहा हूँ)।

जाहिर था कि यह बात शिक्षक के लिए एक चुनौती थी। अब शिक्षक ने स्थिति को जटिल बनाने के लिए एक और चुनौती सामने रखी। उन्होंने कहा कि, 'ठीक है, शायद चॉक पाउडर के साथ आप इसे पी सकते हैं, लेकिन अब मैं इसमें मिट्टी, रेत और धूल डालूँगा,' उन्होंने ऐसा ही किया और कक्षा से फिर पूछा,'क्या अब कोई इसे पी सकता है?'

अब हालत ऐसी हो गई थी कि लगता था कि यह योजना अवलोकनकर्ता के सामने एक डेमो कक्षा के रूप में प्रस्तुत कर दी जाएगी। लेकिन बच्चे तो आखिर बच्चे ठहरे। उनके दिमाग

में कुछ नया चल रहा था। पुनः एक विद्यार्थी बोला, 'जी हाँ, मैं पी सकता हूँ।'

शिक्षक ने पूछा, 'कैसे?'

जवाब मिला, 'मैं गन्दे पानी को आरओ मशीन के इनलेट में डालूँगा और नल से पीने का शुद्ध पानी ले लूँगा।'

विद्यार्थियों ने शिक्षक के सामने एक अलग ही स्तर की चुनौती रख दी। शिक्षक भी उनके सामने बेइज़्ज़त नहीं होना चाहते थे। अतः उन्होंने कहा, 'ठीक है, लेकिन अगर आपके पास आरओ मशीन न हो तो आप क्या करेंगे?' शिक्षक का प्रयास था कि किसी तरह विद्यार्थियों से पूर्व-निर्धारित और अपेक्षित उत्तर मिल जाए लेकिन विद्यार्थी भी योजनानुसार नियत उत्तर देने को तैयार नहीं थे। एक बार फिर चुप्पी छा गई!

फिर एक मन्द आवाज उभरी। एक लड़की बोली, ' हाँ, मैं बिना आरओ मशीन के भी काम चला सकती हूँ।'

अब तो शिक्षक के धैर्य का बाँध टूट गया और वे बोले, 'ठीक है, आप ऐसा कर सकती हैं लेकिन सारी बात तो यह है कि अगर पानी में कोई अशुद्ध चीज़ मिल जाए तो वह पीने लायक नहीं रहता।' और फिर शिक्षक अपनी पाठ योजनानुसार आगे बढ़ गए। कक्षा ख़त्म हो गई।

स्कूल के बाद हम दोनों इस बात पर चर्चा करने लगे कि क्लास कैसी रही। शिक्षक ने स्वीकारा कि कुछ विद्यार्थियों की वजह से कक्षा में रुकावट आई और उनकी योजना पटरी पर से उतर गई इत्यादि। चर्चा के दौरान मैंने उनसे पूछा कि जो विद्यार्थी पानी को पीने के लिए उपयुक्त बनाने की बात कर रहे थे, अगर आप उनसे अपनी बात साबित करने के लिए कहते तो क्या होता। शिक्षक के रूप में हम विद्यार्थियों के सामने चुनौतियाँ प्रस्तुत कर सकते हैं और उन्हें अपनी बात साबित करने को कह सकते हैं। तो फीडबैक सत्र में मैंने उनके साथ अगले दिन के लिए एक योजना साझा की कि वे उसी विषय को जारी रखें और जो विद्यार्थी पानी को पीने के लिए उपयुक्त बनाने की बात कह रहे थे, उनसे कहें कि वे आगे आएँ और हमें दिखाएँ कि वे इसे कैसे करना चाहते हैं। इसके लिए आवश्यक सामग्री की सूची बनाकर हमें दें जिन्हें मुहैया कराने की कोशिश हम करेंगे। देखें, क्या होता है।

अगले दिन शिक्षक कक्षा में गए और हमारी चर्चा के अनुसार कक्षा की गतिविधि आगे बढ़ाई। आश्चर्य की बात यह थी कक्षा के लगभग 75% विद्यार्थी अपने दावों का प्रदर्शन करने और उन्हें साबित करने के लिए तैयार थे। इसलिए उन्होंने ज़रूरत के सामान की सूची बनाई और विद्यार्थियों को वे चीजें दीं। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि विद्यार्थियों के कई समूहों को आसवन और पृथक्करण की तकनीकों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी, लेकिन वे अपने प्रयोगों में इनका इस्तेमाल कर रहे थे।

विद्यार्थियों का एक समूह गिलास में पानी लेकर उसे मोमबत्ती पर रखकर उबाल रहा था और वाष्प को एकत्र कर रहा था व संघनित वाष्प को एक अलग गिलास में एकत्र किया जा रहा था।

दूसरा समूह पानी की तीन बोतलों को काटकर उनका उपयोग कर रहा था। एक का उपयोग छलनी के रूप में किया गया और इसमें एकत्रित पानी को साफ़ कपड़े की सहायता से पुनः छाना गया और फिर पानी को पत्थर, रेत और लकड़ी के कोयले या चारकोल की परत की सहायता से साफ़ किया गया।

हालाँकि उपकरण और अनुभव की अपनी सीमाएँ थीं पर सैद्धान्तिक रूप से प्रक्रिया सही थी। एक विद्यार्थी ने मुझे दिखाया कि वह पानी से चॉक पाउडर कैसे अलग करेगा। मैंने देखा कि चॉक पाउडर तलछट के रूप में नीचे जमा हो गया और ऊपर का पानी एकदम साफ़ और पारदर्शी था। रासायनिक रूप से भले ही यह पानी पीने लायक नहीं था लेकिन भौतिक रूप से पृथक्करण की प्रक्रिया स्पष्ट थी।

सबसे बढ़िया बात तो यह थी कि हमारे लिए यह एक सुखद आश्चर्य का विषय था कि पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी हमारी अपेक्षा से अधिक जानकारी रखते थे। हमने तो सोचा ही नहीं

था कि विद्यार्थी पृथक्करण के इन जटिल तरीक़ों के बारे में जानते होंगे। अब मुझे लगने लगा है कि शायद हम अपने विद्यार्थियों की योग्यता को वास्तविकता से कम आँकते हैं और उन्हें तब तक एक निर्धारित स्तर तक सीमित रखते हैं जब तक कि वे स्पष्ट रूप से यह न दिखा दें कि हम उनसे जितना कार्य करवा रहे हैं, वे उससे कहीं अधिक करने में सक्षम हैं।

**दीपक दीक्षित** उत्तराखण्ड के दिनेशपुर में स्थित अज़ीम प्रेमजी स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं। इससे पहले वे इरित्रिया के शिक्षा मंत्रालय में 10 वर्षों से भी अधिक समय तक कार्यरत रहे। उन्होंने एम.एससी., बी.एड. और एम.बी.ए. की डिग्री प्राप्त की हैं। भौतिक शास्त्र के शिक्षक के रूप में उनका अनुभव 17 वर्षों से भी अधिक है। उन्हें इलेक्ट्रॉनिक्स पढ़ाने में रुचि है। उन्होंने होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, मुम्बई में एप्स्टिमी-6 में विज्ञान शिक्षण सम्बन्धी पेपर प्रस्तुत किए हैं। "टीचर – अ रिफ्लेक्टिव प्रैक्टिसनर" शीर्षक पुस्तक में कक्षा शिक्षण पर उनका लेख प्रकाशित हुआ है। उन्हें टेबल टेनिस खेलने और पढ़ने का शौक है। उनसे deepak.dixit@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

# कहानी से गणित शिक्षण

गजेन्द्र कुमार देवांगन

साथियों, कहानी सुनना सबको अच्छा लगता है। कहानी के माध्यम से अवधारणा या सन्देश बच्चों तक बहुत सहजता से पहुँचाया जा सकता है। इस तरह के कहानी के माध्यम में, कुछ सावधानियों को ध्यान रखना आवश्यक होता है। बच्चों के नाम, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि में किसी प्रकार के भेदभाव या आहत होने की स्थिति नहीं बननी चाहिए।

कहानी से गणित शिक्षण का एक प्रयास परिमाप की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कक्षा पाँचवीं में किया गया। कहानी को बच्चों के परिवेश से जोड़ते हुए सुनाया गया। कहानी के शुरू से अन्त तक सारे बच्चे लट्टू हो गए थे। कहानी में उनके परिवेशीय नाम, गाँव का नाम तथा ग्रामीण परिवेश का उपयोग किया गया। उपस्थित बच्चे लगभग पहले ही प्रयास में परिमाप की अवधारणा को समझ चुके थे। आइए जानते हैं इस प्रयास को।

एक गाँव था इच्छापुर। कुछ साल पहले की बात है। उस समय इच्छापुर में काफ़ी बड़ा मैदान था। मैदान बहुत बड़ा था। धीरे-धीरे गाँव में लोगों की संख्या बढ़ रही थी। गाँव के लोग मैदान को धीरे-धीरे घेरने लग गए थे। लोग मैदान में खेत-खलिहान के लिए बड़ी-बड़ी जगह घेर रहे थे। इसे देखकर गाँव के कुछ लोग चिन्तित होने लगे कि लोग यदि इसी तरह से मैदान को घेरते रहेंगे तो बच्चों के खेलने के लिए भी जगह नहीं बच पाएगी। तो क्यों न हमें बच्चों के खेलने हेतु मैदान के लिए जगह घेरनी चाहिए। कुछ लोगों को यह विचार अच्छा लगा और लोगों ने तय किया कि हम कल से ही मैदान घेरने जाएँगे।

गाँव में बात फैल गई। बच्चे-बड़े सभी को यह काम अच्छा लगा। अगले दिन गाँव के अनेक लोग अपनी-अपनी तैयारी करके मैदान की ओर जाने लगे। एक ने चूना पकड़ा, एक ने कुदाल पकड़ी, एक ने हँसिया लिया कि यदि मैदान में घास, काँटे होंगे तो काटूँगी। एक ने रस्सी पकड़ी। इस प्रकार से लोग आवश्यक सामान ले-लेकर मैदान में पहुँच गए। लोग बड़े मैदान के काफ़ी बड़े हिस्से को घेरने की तैयारी करने लगे। एक ने रस्सी के एक किनारे को पकड़ा, दूसरे किनारे को एक अन्य ने पकड़ा और जहाँ तक सीधा जा सकता था, गया। एक रस्सी के ऊपर चूना डालते गया। इस प्रकार से मैदान के लिए जगह को चिन्हित कर लिया गया। सबके चेहरे खिल उठे कि चलो हमारे बच्चों को खेलने के लिए हमेशा के लिए बहुत बड़ा मैदान मिल गया।

लोग अब मैदान पर ही केन्द्रित चर्चा करते हुए अपने-अपने घरों की ओर लौट रहे थे। इसी बीच एक आदमी को चिन्ता होने लगी कि यदि हम मैदान को ऐसे ही छोड़ देंगे तो कुछ दिन बाद तो चूना मिट जाएगा और कोई दूसरा आदमी आकर क़ब्ज़ा कर लेगा तो हमारी योजना तो ख़राब हो जाएगी। अतः उसने प्रस्ताव रखा कि क्यों न कल हम कलेक्टर के पास चलें औए माँग करें कि हमारे मैदान की सुरक्षा का प्रबन्ध कर दें और घेरे के लिए रुपए पास कर दें। प्रस्ताव सबको अच्छा लगा। सभी अगले ही दिन कलेक्टर के पास जाने को राज़ी हो गए।

अगले दिन लोग अपने-अपने साधन लेकर चौक में आ गए। लोग कलेक्टर ऑफिस पहुँच गए। थोड़ी देर बाद कलेक्टर साहब आ गए। लोगों को देखकर उन्होंने आने का कारण पूछा। लोगों ने अपनी माँग बताई। कलेक्टर ने पूछा-

- कितना बड़ा मैदान है?
- बहुत बड़ा।
- बहुत बड़ा मतलब, क्या इस कमरे जितना बड़ा?
- नहीं साहब इससे कई गुना बड़ा।
- क्या इस भवन जितना बड़ा?
- नहीं साहब इससे भी बड़ा।
- तो क्या तुम लोगों ने सफलपुर तक पूरा मैदान घेर लिया है?
- नहीं साहब, उतना भी बड़ा नहीं।
- तो तुम लोग पूरा-पूरा नाप क्यों नहीं बताते कि मैदान की लम्बाई-चौड़ाई कितनी है?

अब तो लोग अवाक ही रह गए, उन्होंने तो मैदान की लम्बाई-चौड़ाई को नापा ही नहीं था। कलेक्टर के इस प्रश्न का कोई जवाब ही नहीं था। अब तो लोगों के पास वापस आने के सिवाय कोई रास्ता ही नहीं था। कलेक्टर ने भी सलाह दी कि आप लोग अपने मैदान को ठीक से नापकर आएँ।

अब लोग मैदान नापने हेतु आवश्यक सामान लेकर मैदान की ओर चल पड़े। एक ने मीटर टेप पकड़ा, एक ने पैन-कॉपी पकड़ी और कुछ लोगों को लेकर मैदान में पहुँच गए। उनके द्वारा घेरा गया मैदान सीधा–सीधा लाइनों से बना था। टेढ़ा-मेढ़ा या गोलाकार नहीं था। लोग मैदान कैसे नापें? इस पर सब अपना-अपना सुझाव देने लगे। एक ने सुझाव दिया क्यों न हम एक-एक लाइन को क्रम से नापते जाएँ? हमारे मैदान में कुल पाँच लाइन बनी हैं हम उन पाँचों को क्रम से नाप लेते हैं और फिर ..... इतना सुनते ही एक तपाक से बोल उठा और फिर हम उन सभी नापों को जोड़ देंगे। इस प्रकार से हमारे मैदान में बनने वाली दीवार की कुल लम्बाई पता चल जाएगी। उपस्थित सभी लोगों को यह बात समझ में आ गई और उन्होंने मापन कार्य प्रारम्भ कर दिया। कुल नाप आया 38 मीटर, फिर दूसरे किनारे पर पहुँचे नाप आया 23 मीटर, फिर अगला नाप 27 मीटर, 44 मीटर और आखरी लाइन का नाप 49 मीटर आया। दीवार की कुल लम्बाई आई - 181 मीटर। अपने किए इस काम पर सन्तोष का भाव सबके चेहरे पर स्पष्टता से झलक रहा था। लोग इसे अपनी अगली उपलब्धि मान रहे थे।

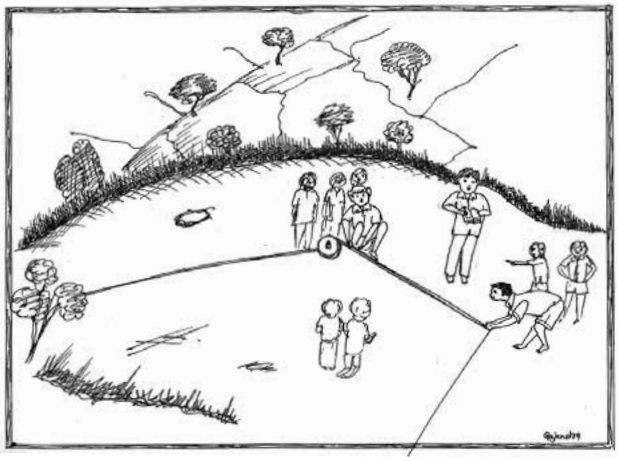

अगले दिन सभी लोग फिर कलेक्टर के पास पहुँच गए। इस बार उन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी नाप सहित अपनी माँग दुहराई। कलेक्टर ने पूछा, आप लोग घेरा किससे करवाना चाहते हैं तार-काँटे से या पक्की दीवार से? सब लोग एक मत से एक साथ चिल्ला उठे पक्की दीवार से।

- कितनी ऊँची दीवार बनवाना चाहते हैं?
- पूरे 3 मीटर ऊँची।
- पूरे मैदान को घेरना है?
- जी साहब। पूरा के पूरा 181 मीटर।
- यदि कुछ छोड़ना हो तो सोच-समझ लो।
- नहीं साहब, हमने पूरा सोच-समझ लिया है।
- यदि आपने पूरे 181 मीटर में दीवार बनवा ली और वह भी 3 मीटर ऊँची तो मैदान के अन्दर जाओगे कैसे?

लोग आपस में काना-फूसी करने लगे। यह बात तो हमने सोची ही नहीं थी। अब हम क्या करें? साहब ठीक कह रहे हैं। मैदान के अन्दर जाने के लिए रास्ता तो छोड़ना ही पड़ेगा?

काना-फूसी के बीच कलेक्टर ने कहा, आप लोग थोड़ा सोचकर निर्णय लें कि रास्ते के लिए कितनी जगह छोड़नी है, चाहें तो आप बाहर निकलकर चर्चा कर सकते हैं।

लोग बाहर आए। सबने मिलकर तय किया कि रास्ते के लिए 4 मीटर जगह छोड़ेंगे। उन्होंने अपना निर्णय कलेक्टर को बताया। लोगों के इस निर्णय की उन्होंने तारीफ की और खुशी व्यक्त करते हुए 177 मीटर दीवार बनवाने के लिए रुपए पास कर दिए। लोगों के चेहरे भी ख़ुशी से चमक उठे ।

इस दौरान मैं सतत रूप से मैदान की आकृति को ग्रीन बोर्ड पर बना रहा था और दीवारों की माप को साथ-साथ लिखते जा रहा था। बच्चे प्रक्रिया को समझ रहे थे और वे भी मन ही मन गणितीय गणना कर रहे थे। अगले दिन जब मैंने प्रक्रिया से सम्बन्धित बात की, अभ्यास प्रश्न दिए तो बच्चे गणना करके जवाब दे रहे थे।

**गजेन्द्र कुमार देवांगन** अज़ीम प्रेमजी स्कूल धमतरी, छत्तीसगढ़ में पिछले छह वर्षों से शिक्षक हैं। इससे पहले वे छत्तीसगढ़ के शासकीय विद्यालय में 12 वर्ष तक शिक्षक रहे हैं। बच्चों के लिए कविता-कहानी लिखना, संगीत सुनना और चित्रकारी करना उन्हें अच्छा लगता है। उनसे gajendra.dewangan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

# शिक्षक का आत्मावलोकन

**जुलाई** 2016 में मैं अज़ीम प्रेमजी विद्यालय दिनेशपुर से जुड़ी। यहाँ काम करते हुए अब लगभग एक साल पूरा होने वाला है। मैंने विज्ञान से स्नातक किया है और डाइट लखनऊ से बीटीसी का कोर्स किया है। हालाँकि अपनी इंटर्नशिप के दौरान मैंने पहले भी कुछ सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों के साथ काम किया था लेकिन यहाँ काम करने का अनुभव बिलकुल अलग और चुनौतीपूर्ण रहा।

तो जब मैं स्कूल से जुड़ी तो शुरुआत में मुझे चीज़ें बहुत आसान लगीं। मुझे प्राथमिक कक्षाओं को अँग्रेज़ी और उच्च प्राथमिक कक्षाओं को विज्ञान पढ़ाना था। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गए चीज़ें थोड़ी मुश्किल होती गईं। बच्चों को, विशेषकर छोटे बच्चों को सम्भालना मेरे लिए एक कठिन कार्य था। उन्होंने मुझे पागल बना दिया था।

मेरे द्वारा तैयार की गईं पाठ योजनाएँ और जो टीएलएम मेरे पास थे वो इन छोटे 'जम्पिंग जैक्स' के लिए कभी पर्याप्त नहीं होते। वास्तव में, मैं कक्षा तीन को अँग्रेज़ी पढ़ाने से जूझ रही थी।

मैंने अपने विचारों को अपने सहकर्मियों के साथ साझा किया। मैं यह जानने के लिए उत्सुक थी कि कैसे यह स्थिति बेहतर होगी। जब उन सभी ने अपने विचार साझा किए तो मैं उनके अनुभवों और उन परिस्थितियों के बीच सम्बन्ध को देख पाने में सक्षम थी जिनका सामना मैं कर रही थी। मैंने कई तरीक़े अपनाए लेकिन कुछ तो था जो सही नहीं था।

जल्दी ही मुझे कक्षा तीन का कक्षा शिक्षक घोषित किया गया। 'नहीं.....!' जी हाँ, यह खबर सुनने के बाद मेरा पहली प्रतिक्रिया यही थी कि 'इससे बुरा और क्या हो सकता है।'

तो बतौर कक्षा शिक्षक जब मैं पहले दिन कक्षा में दाखिल हुई मैंने कुछ आधार नियम बनाए। मसलन उनके बैठने की व्यवस्था बदल दी वग़ैरह। एक सप्ताह बाद भी चीज़ें ठीक होती नहीं दिख रही थीं। जुलाई से दिसम्बर तक मैं वास्तव में कक्षा तीन के बच्चों के समूह को सम्भालने के लिए संघर्ष कर रही थी। अब तक बहुत समय बीत चुका था। मैंने सोचा, बहुत सोचा कि 'आखिर दिक़्क़त क्या है? क्यों बच्चे मेरी बात नहीं सुन रहे हैं? चीज़ों को ठीक करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? क्या मैं एक बुरी शिक्षक हूँ? क्या मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए?' इन विचारों ने पूरी तरह मेरे दिमाग़ पर कब्ज़ा कर लिया था लेकिन मेरे पास इनमें से एक का भी जवाब नहीं था।

हमारी एक मीटिंग थी जिसमें हम बच्चे कैसे सीखते हैं और ऐसे ही अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर विमर्श कर रहे थे। उसी दौरान एक मुद्दा 'शिक्षक विद्यार्थी सम्बन्ध' का भी आया और अचानक ही यह बात मेरे दिमाग़ में कौंधी कि, 'यह सम्बन्ध कहाँ हैं? मैं उन्हें जानती ही कितना हूँ? वास्तव में मैं उनके बारे में कुछ भी नहीं जानती थी।'

तो आखिरकार मुझे अपने सवालों के लिए एक संकेत मिल गया था। मैंने कभी वह सम्बन्ध बनाया ही नहीं। मैं सिर्फ अपने सहकर्मियों के अनुभवों के अनुसार प्रतिक्रियाएँ दे रही थीं। समस्या को सुलझाने का जो तरीक़ा उन्होंने अपनाया था मैं भी वही आजमा रही थी। लेकिन बच्चे अलग-अलग हैं, मैं अलग हूँ तो फिर मैं एक जैसे समाधान की अपेक्षा कैसे कर सकती हूँ। इसके बाद मैंने उनका हिस्सा बनने और उनके बारे में ज़्यादा-से-ज़्यादा जानने का प्रयास किया। मैंने उनकी पसन्द, ना-पसन्द, समस्याएँ, परिवार वग़ैरह के बारे में बातचीत की। कक्षा के दौरान या कक्षा के बाहर भी मैं उनके साथ रहने का प्रयास करती। मैंने अपने आप को उनके लिए और सुलभ बनाया। मैं उनके विषय शिक्षकों के साथ उनके कार्य, उनके व्यवहार और कहाँ पर कमी है इस सब के बारे में बात करती। वह किस प्रकार की कक्षा चाहते हैं, कक्षा में उन्हें किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना कर पड़ रहा है, उनके समाधान के लिए किस तरह के नियम बनाने चाहिए आदि पर उनके विचारों के बारे में हम (मैं और बच्चे) बातचीत करते। अब मैं उन्हें और उनकी क्षमताओं के बारे में थोड़ा-थोड़ा जानने लगी थी, इसलिए मैंने उनकी रुचि के अनुसार उन्हें कुछ कार्य सौंपे और यह देखकर मैं चकित थी कि वास्तव में वह कितने ज़िम्मेदार हैं।

एक शिक्षक के रूप में मेरा विकास अभी जारी है और अभी भी मुझे उनमें से कुछ के साथ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है लेकिन ठीक है। जल्द ही हम एक-दूसरे को और बेहतर रूप से जान पाएँगे।

**कनिका श्रीवास्तव**
शिक्षक, अज़ीम प्रेमजी विद्यालय
दिनेशपुर, उधमसिंह नगर
kanika.srivastava@azimpremjifoundation.org
**अनुवाद :** कविता तिवारी

# निरर्थक के लिए स्थान बनाना

मालविका राजनारायण

आप किसी बच्चे को टूटा हुआ बिस्कुट देकर देखिए। भले ही वह उसे आपसे ले ले, लेकिन वह उसके टूटे और बिगड़े हुए रूप को देखकर नाख़ुश होगा। मैं रोज़ चॉक के टुकड़ों, काग़ज़, पेंट बॉक्स, ब्रशों और पुराने अख़बार को लेकर इसी बात का सामना करती हूँ।

'टीचर, इस बॉक्स में सारे रंग नहीं हैं!'

'टीचर, यह काग़ज़ कोने से फटा हुआ है।'

'टीचर, यह क्रेयॉन टूटा हुआ है।'

'टीचर, यह चॉक का टुकड़ा छोटा है, मुझे बड़ा टुकड़ा चाहिए।'

'टीचर, मुझे बड़ा ब्रश चाहिए, जैसा आपने उसे दिया है।'

हमारा जीवन पेंट बॉक्स की तरह परिपूर्ण नहीं है जिसमें हर रंग की टिकिया बराबर हो। क्या स्कूल हमें आदर्श समानता का अनुभव कराते हैं, या वे हमें सम्वेदना और समझ के साथ एक असमान और अपूर्ण दुनिया को स्वीकार करने के लिए तैयार करते हैं? कला हमें प्रश्न पूछने और हमारी मौजूदा धारणाओं को बदलने में सहायता कर सकती है ताकि हम उसे दूसरों के साथ साझा कर सकें। जो कुछ हमारे पास है, उसकी सहायता से हम सुन्दर चीज़ें बनाने का प्रयास करते हैं और प्रामाणिक रूप से अपनी आवाज़ दूसरों तक पहुँचाते हैं। मैं कक्षा में इस आशा के साथ आपसी बातचीत के अवसर पैदा करने की कोशिश करती हूँ कि इससे दूसरों के साथ काम करने और सीमाओं के भीतर काम करने की इच्छा और क्षमता को बढ़ावा मिले; मैं उन्हें बहस और मतभिन्नता का मुक़ाबला करने तथा मुद्दों पर चर्चा करके उन्हें हल करने के मौक़े भी देती हूँ। इन सबके चलते वे किस तरह की चित्रकला करते हैं? कुछ अस्पष्ट लेखन, रंगों के कुछ छींटे, कभी-कभी अपने परिवेश

का प्रतिबिम्ब, किसी डिज़ाइन का विवरण, अपनी यादों की एक झलक और कुछ काल्पनिक। जब इनकी तुलना वर्णमाला को पढ़ने, शब्दों, कहानियों, तथ्यों और इतिहास को सीखने, परीक्षा देकर नौकरी पाने आदि से की जाती है तो ये चीज़ें कुछ ख़ास नहीं लगतीं। किसी ऐसी गतिविधि के लिए पेंट-बॉक्स से सम्बन्धित बहस में समय लगाना जिसमें 'सुरक्षित नौकरी और नियमित कमाई' की अधिक सम्भावना नहीं है' वाकई महत्त्वहीन बात लगती है।

लेकिन मैं यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि अगर बच्चों को विभिन्न रंगों, रूपों, ध्वनियों और संस्कृतियों से रूबरू करवाया जाए तो क्या उन्हें विभिन्न वर्णों और विभिन्न आकार वाले शरीरों में सौन्दर्य देखने में मदद मिलेगी और क्या वे इन विविधताओं के साथ कार्य करने के लिए तैयार होंगे? अगर उन्हें यह बात न सिखाई जाए कि 'बिल्ली का चित्र कैसे बनाना चाहिए' तो हो सकता है कि वे अपने स्वयं के तरीक़े खोज लें और न सिर्फ़ एक सामान्य बिल्ली का चित्र बनाना सीख जाएँ बल्कि नीले कॉलर वाली उस बिल्ली का चित्र भी बना लें जो हमारे स्कूल में घूमती है या फिर उस बिल्ली का चित्र जो उनके घर के पास रहती है। अगर हज़ार अलग-अलग तरह की संस्कृतियों और स्थानों वाली बिल्ली के हज़ार अलग-अलग तरह के निरूपण एक-दूसरे को यह सम्प्रेषित कर सकते कि ये सभी बिल्लियों के चित्र हैं तो यह कितनी सुन्दर बात है। यह केवल कला की बात नहीं है, लेकिन इससे जो समझदारी पैदा होती है और जो ज्ञान यह साझा करती है, वह सबसे सुन्दर है। अपने व्यक्तिगत अनुभवों को समझने के इन्हीं प्रयासों से कला उत्पन्न होती है; जब यह सार्वभौम के साथ विलीन होने के लिए पनपती है। बच्चों की कला में इस सार्वभौमिकता का गुण है जो उनके बड़े होने के साथ धूमिल होता जाता है। वे हम वयस्कों को दुनिया देखने के वे तरीक़े बताते हैं जिन्हें हम भूल चुके हैं।

कक्षाएँ केवल कुछ प्रकार के अधिगम के लिए सुविधाजनक हैं। यह बच्चों का सहज स्वभाव है कि उन्हें से कक्षा से बाहर रहना अच्छा लगता है। स्कूल के अधिकतर समय में कक्षा एक भौतिक सन्दूक के रूप में कार्य करती है जिसके भीतर बच्चे यह महसूस करते हैं कि वे स्कूल से जुड़े हुए हैं। कक्षा के भीतर उनकी गतिविधियों के प्रबन्धन का सबसे सरल उपाय यह है कि कक्षा के बाहर के स्थान को 'अवांछनीय' बना दिया

*कक्षा 2 के विद्यार्थी द्वारा काग़ज़ पर वॉटर कलर से की गई चित्रकारी, 2017*

जाए, इसलिए हम में से बहुत से शिक्षक/सुगमकर्ता कभी-कभी बच्चों से यह कहते हैं कि अगर वे कक्षा में गड़बड़ी करेंगे तो उन्हें बाहर भेज दिया जाएगा। बच्चे इस अनुकूलन को शीघ्र ही अपना लेते हैं। बच्चों की कक्षा के बाहर निकलने की प्रवृत्ति स्कूल के दौरान किसी भी विषय की कक्षा में कभी भी प्रकट

*कक्षा 3 के विद्यार्थियों द्वारा समूह कार्य*

हो सकती है और शिक्षकों व सुगमकर्ताओं के लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। कला की हर कक्षा में मैं इसका सामना करती हूँ लेकिन बतौर कलाकार मुझे इसी बात ने बहुत लुभाया भी है। एक कक्षा में मैंने बहुत ईमानदारी के साथ कुछ बच्चों से आग्रह किया कि वे बाहर जाएँ और पाँच मिनट टहलकर कक्षा में वापस आ जाएँ और यह सज़ा नहीं है, सिर्फ स्थान परिवर्तन तथा चारों ओर एक चक्कर लगाने की स्वतंत्रता है; लेकिन फिर भी बच्चों को लगा कि मैं उन्हें सज़ा दे रही हूँ। जब कभी बच्चों ने कक्षा में अशान्ति फैलाई या दूसरे बच्चों के साथ मारपीट की तो मैंने उन्हें बाहर भेजने की कोशिश की और यह पाया कि कुछ समय के बाद वे अपने आप कक्षा में लौट आते हैं और पहले की तुलना में शान्त हो गए होते हैं। एक बार तो एक बच्चा दरवाज़े की बजाय खिड़की से अन्दर आया, तो एक अन्य बच्चा एक बिल्ली को देखने के लिए खिड़की से बाहर कूद गया। वैसे खिड़की की ऊँचाई बहुत अधिक नहीं है और इसलिए वहाँ से आने-जाने में ख़तरे की कोई बात नहीं है, और दोनों बार मुझे ऐसा कोई वैध कारण नहीं मिला कि मैं बच्चों के बाहर-अन्दर आने-जाने पर कोई आपत्ति करूँ, बल्कि मुझे तो उनकी स्वतंत्रता व साहस की भावना और खिलन्दड़ स्वभाव देखकर ख़ुशी हुई। मैं अक्सर सोचती हूँ कि 'कक्षा से ब्रेक/अन्तराल लेने' को एक अलग रूप दिया जा सकता है। एक बार कक्षा में कुछ बच्चे अपना काम पूरा कर लेने के बाद दूसरे बच्चों को परेशान करने लगे तो मैंने उनसे बाहर जाकर पेड़-पौधे देखकर आने को कहा। बच्चे बहुत उत्साहित हुए और बाक़ी के बच्चे भी अपना काम जल्दी से ख़त्म करके 'बाहर जाकर पेड़-पौधे देखने' के लिए लालायित हो गए! किसी संरचित वातावरण से छूटकर बाहर निकलना, खिलन्दड़ होना और जोखिम उठाना आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो कल्पना और रचनात्मकता का पोषण करती हैं।

इन अनुभवों के कारण मेरे अन्दर उन अवज्ञाकारी बच्चों के कामों के बारे में जिज्ञासा पैदा हो गई है जो कक्षा के काम में 'बाधा' डालते हैं। मेरी चुनौती इस बात में है कि मैं उनकी उसी ऊर्जा को सावधानीपूर्वक एक ऐसी दिशा की ओर बढ़ाऊँ जिससे वे उसका प्रयोग अपनी रुचि की गतिविधियों या विचारों के विकास में करें, ताकि वे अपनी अनूठी विकास पद्धति के अनुरूप तरीक़ों से अपने अधिगम को संवर्धित करने के लिए स्व-प्रेरित हो सकें। जो विद्यार्थी इतने अवज्ञाकारी नहीं हैं, उन्हें मैं इस बात के लिए प्रोत्साहित करती हूँ कि वे 'आज्ञाकारिता' के रवैये से निकलकर प्रश्न पूछने और खोज करने की एक स्वस्थ स्थिति में आ जाएँ। उदाहरण के लिए कक्षा 5 और 6 के कुछ विद्यार्थी विचारों को समझने में विशेष रूप से तेज़ हैं, शिक्षित परिवारों से होने के कारण उनके पास जानकारी के व्यापक साधन हैं लेकिन ईमानदारी के साथ किसी किताब

*कक्षा 5 के विद्यार्थी द्वारा काग़ज़ पर पेंसिल और स्केच पेन से पत्ते की ड्राइंग और पैटर्निंग अभ्यास, 2017*

से चित्र की नक़ल करके और उसमें रंग भरकर वे अपनी क्षमताओं और कौशलों को साबित करने की ज़रूरत महसूस करते हैं। मैं उनके कौशलों की सराहना करती हूँ लेकिन साथ ही उनके साथ इन विषयों पर चर्चा भी करती हूँ जैसे व्यक्तिगत विचारों और अभिव्यक्ति का महत्त्व, हम इसे कैसे पा सकते हैं; और यह कि उनका प्रत्येक दृष्टिकोण उनके मन के विकास और उनकी संस्कृति के विकास के लिए प्रभावकारी और लाभकारी है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन चर्चाओं से उनके अपने आत्मविश्वास और कुछ नया करने की उनकी कोशिशों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। वे अपनी चीज़ों का महत्त्व समझने लगे हैं, हम इन बातों पर भी चर्चा करते हैं कि कला की कक्षा में हम पुराने अख़बारों का पुनःचक्रण क्यों करते हैं, हम पुराने स्केच पेनों का उपयोग करके अन्य वस्तुएँ कैसे बना सकते हैं और हर विवेकपूर्ण कार्य प्रकृति के संरक्षण में किस प्रकार योगदान कर सकता है।

'आप चित्र क्यों बनाते हैं?' एक दिन मैंने अपनी पाँचवीं कक्षा में पूछा।

'ताकि हम चित्र बनाना सीख लें', एक विद्यार्थी ने कहा।

'इससे जीवन में आपको कैसे मदद मिलती है?', मैंने फिर पूछा।

'टीचर, आप तो सवाल पर सवाल पूछ रही हैं!', एक बच्चे ने शिकायत की।

'अगर हम चित्र बनाना सीख लें तो हम पैसे कमा सकते हैं... मैंने देखा है कि फ़िल्मी पोस्टर बनाए जाते हैं और जो लोग इन्हें बनाते हैं उन्हें इसके पैसे मिलते हैं', दूसरे ने कहा।

'आपने जिस फ़िल्मी पोस्टर को देखा वह कितना बड़ा था? क्या आप बता सकते हैं कि वह तकरीबन कितने फ़ीट/मीटर का था?'

'इतना बड़ा' - उसने अपने हाथ फैलाकर उस पोस्टर का आकार बताने की कोशिश की - 'पर मुझे यह नहीं पता कि वह कितने फ़ीट का था।'

'क्या वह इस दीवार जितना बड़ा था? आपको क्या लगता है कि आपकी कक्षा कितनी बड़ी है?'

'50 फ़ीट!',एक बोला।

नहीं, 20 फ़ीट, दूसरा बोला।

'नहीं, 60 फ़ीट!', एक अन्य बोला।

'100 फ़ीट!', एक लड़की चिल्लाई।

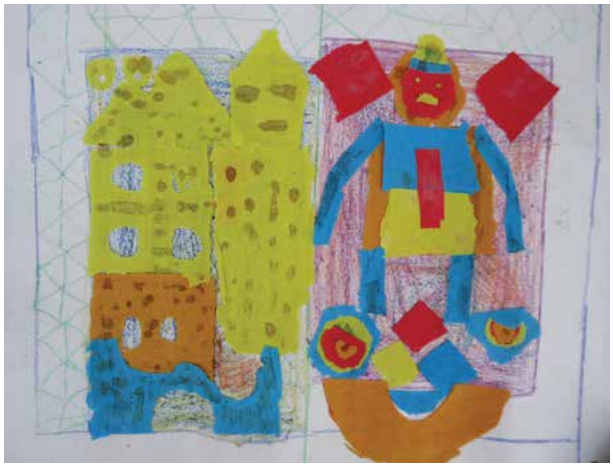

*कक्षा 6 के विद्यार्थियों द्वारा काग़ज़ पर कोलाज, 2017*

'सौ फ़ीट? आप उसे नापकर क्यों नहीं देखतीं?' मैंने कहा।

उसने एक पैमाना लिया और नापना शुरू कर दिया। पहले लम्बाई फिर चौड़ाई। फिर उसने वे संख्याएँ बोर्ड पर लिखीं और उन्हें जोड़ दिया।

'आप इन्हें जोड़ क्यों रही हैं?', मैंने पूछा।

'पूरे आकार का पता लगाने के लिए - ओह, मुझे इन्हें घटाना चाहिए था!', उसने कहा।

'नहीं, नहीं, हमें इन्हें जोड़ना चाहिए!' किसी और ने कहा।

‘टीचर, आप हमें चित्रकला सिखाने आई हैं या गणित?’, एक लड़के ने पूछा जो जाहिर तौर पर अधीर हो रहा था और ड्राइंग शुरू करना चाहता था।

‘शायद किसी दिन हम कक्षा की इस दीवार पर एक बड़ी पेंटिंग बनाने की बात सोचें। अभी आपको मोटे तौर पर पता है कि आपको अपनी पुस्तक के एक पृष्ठ के लिए कितना रंग चाहिए। तो हमें इस दीवार के लिए कितने पृष्ठों की ज़रूरत पड़ेगी?’

‘हमें नापने पर जो संख्याएँ मिलीं, उन्हें गुणा करना होगा!!’, वे खुशी से चिल्लाए क्योंकि उन्होंने एक ऐसी बात का पता लगा लिया था जिसके बारे में पहले नहीं जानते थे।

कला जीवन का अभिन्न अंग है और इसे अधिगम के एक महत्त्वपूर्ण तरीक़े के रूप में देखा जाना चाहिए। कला सम्बन्धी वस्तुएँ और कलाकृतियाँ एक बड़ी प्रक्रिया का सहायक परिणाम हैं। ज्ञान की खोज और दुनिया की समझ कला में उतनी ही अभिप्रेरक है जितनी कि विज्ञान या दर्शन में। किसी भी संस्कृति के सार्थक विकास के लिए इस बात को मान्यता देना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

**मालविका राजनारायण** पेशेवर विजुअल आर्टिस्ट हैं और फेलोशिप कार्यक्रम के तहत यादगीर, कर्नाटक के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में कला संसाधिका के रूप में कार्यरत हैं। कर्नाटक चित्रकला परिषद, बेंगलूरु के पेंटिंग विभाग से स्नातक की उपाधि पाने के बाद उन्होंने एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा के फाइन आर्ट संकाय से पेंटिंग में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। उनसे malavika.rajnarayan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

# जो बच्चे नहीं सीख पाते !

मोहम्मद इसरार

किसी भी स्कूल से जुड़ी हुई दो सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ मानी जाती हैं - शिक्षक और बच्चे। स्कूल के सन्दर्भ में इन्हें किसी भी क्रम में देखा जा सकता है। पहले शिक्षक, बाद में बच्चे या पहले बच्चे, बाद में शिक्षक। ऐसा इसलिए कि यदि कुछ वर्ष पहले तक शिक्षा, शिक्षक केन्द्रित थी तो वर्तमान में बाल केन्द्रित मानी जाने लगी है। बच्चों के सीखने से सम्बन्धित नए तथ्य सामने आने लगे हैं। यह दावा भी किया जाने लगा है कि बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं। शिक्षक को केवल ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होती हैं जिनमें बच्चा आसानी से सीख पाए। शिक्षाशास्त्री यह भी दावा करते हैं कि बच्चा 80 से 90 प्रतिशत अपने परिवेश और घर के माहौल आदि से ही सीखता है। हालाँकि यह विवाद का विषय हो सकता है। बहरहाल मामला चाहे कुछ भी हो लेकिन इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्कूल में बच्चे जो कुछ भी सीखते हैं उनमें शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका अवश्य होती है। एक शिक्षक हमेशा ही चाहता है कि उसके बच्चे विभिन्न कौशल सीखें और अच्छा प्रदर्शन करें। बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया से जुड़ा दूसरा पहलू यह भी है उसमें उसका सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, घरेलू वातावरण, उसकी परवरिश, माता-पिता का सहयोग, मित्र-गणों से बातचीत आदि कितना सहयोग कर रहा होता है। बच्चों के सीखने या ज्ञान निर्माण करने में उक्त दोनों ही बिन्दुओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह कम या अधिक मात्रा में हो सकती है। और कुछ स्थितियों में बराबर भी हो सकती है। इस सन्दर्भ को अपने संज्ञान में आने वाले कुछ प्रमुख बिन्दुओं को आरेखित करके देखना चाहूँगा। यह मेरा अपना दृष्टिकोण और नज़रिया है। इसलिए इसे मैं स्वयं से जुड़ी एक छोटी-सी घटना के आलोक में देखते हुए आगे बढ़ना चाहूँगा।

मेरी परवरिश मेरे नाना के घर पर हुई थी। उस परिवार में कुल मिलाकर हम चौदह बच्चे पढ़ने-लिखने वाले थे। मेरे अलावा भी दो अन्य रिश्तेदारों के बच्चे उसी परिवार में रहकर शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इसलिए बच्चों के मामले में वह परिवार काफ़ी भरा-पूरा था। परिवार के बड़े व सम्मानित सदस्यों मामा-मामी, नाना-नानी आदि के मध्य सभी बच्चों के पढ़ने-लिखने के बारे में ये तुलनात्मक बातें अवश्य होती थीं कि सभी बच्चों में कौन-सा बच्चा मेधावी है? कौन बुद्धिमान है और कौन सबसे होशियार? अक्सर हम सभी की एक-दूसरे से तुलना करके देखी जाती थी। यह उनका दोष नहीं था क्योंकि आरम्भ से ही हमारे देश की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था तुलनात्मक प्रणाली पर आधारित रही है। और शिक्षा के मामले में तो कमोबेश प्रत्येक स्तर पर बच्चे की तुलना करके ही देखा जाता रहा है। वर्तमान में इस स्थिति में थोड़ा-सा बदलाव अवश्य आया हो और प्राथमिक स्तर पर भले ही सब बच्चों को समान स्तर का मानकर कक्षा-दर-कक्षा आगे बढ़ाते रहने की प्रक्रिया चल रही हो। लेकिन इससे आगे परीक्षा प्रणाली से गुजरने पर उनकी छँटनी होना स्वाभाविक है।

मेरी नानी मेरे सबसे छोटे मामा के चार बच्चों को बहुत बुद्धिमान, होशियार और तेज़ दिमाग़ी मानती थीं। और उन बच्चों के बचपन के दिनों में उनके ज्ञान और कुशलतापूर्वक किए गए कार्यों का मुझसे बखान करते हुए उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा किया करती थीं। उस समय अक्सर मैं नानी से कह दिया करता था कि बचपन में प्रत्येक बच्चा बीरबल होता है, बड़े होने पर ही उसके बारे में सही-सही पता चलता है कि वह क्या है? कैसा है? उस समय मुझे बच्चों के स्वभाव, उनके मनोविज्ञान, सीखने-समझने आदि से सम्बन्धित अधिक ज्ञान नहीं था। लेकिन बच्चों से जुड़े कुछ खट्टे-मीठे अनुभव प्राप्त करने के बाद मैं यह मानने लगा हूँ कि एक बच्चा अपने जीवन में वैसा ही बनता है जैसी घरेलू परिस्थितियाँ और सामाजिक वातावरण उसे बनने पर मजबूर करते हैं।

इस तथ्य को लगभग बाईस वर्ष बाद मैंने और गहराई से तब महसूस किया जब अच्छी-खासी शिक्षा प्राप्त करने और काफ़ी प्रयास करने के बावजूद भी मेरे मामा के वे चारों लड़के अपनी शिक्षानुरूप कोई कार्य नहीं पा सके। अन्त में उनमें से दो ने अपनी पुश्तैनी कृषि करना आरम्भ कर दिया और दो ने दुकान खोल ली। यदि आज मेरी नानी जीवित होतीं तो उनकी कई धारणाओं को आघात पहुँचा होता। बल्कि मैं सोचता हूँ कि शायद नानी उन अध्यापकों को भी अवश्य दोष देतीं जिन्होंने उन बच्चों को पढ़ाया था। क्योंकि मेरी शिक्षा-दीक्षा भी उसी स्कूल में हुई थी जिसमें मेरे मामा के बच्चे पढ़ते थे। कक्षाएँ भले ही आगे-पीछे थीं।

काफ़ी समय से शिक्षण कार्य से जुड़ा होने के कारण इतना अवश्य अनुभव कर पाया हूँ कि एक अध्यापक कभी भी नहीं

चाहता कि उसकी कक्षा का कोई बच्चा न सीखे या सीखने की प्रक्रिया में पिछड़े। वह एक (अनुमानित) तीस बच्चों की कक्षा हेतु अपनी प्रभावी योजना बनाता है। विभिन्न क्रियाकलाप और प्रयास करते हुए विषयवस्तु को बच्चों तक पहुँचाने का निरन्तर प्रयत्न करता है। और हर सम्भव प्रयास करता है कि उसे अपने काम में सफलता मिल जाए। फिर भी सीखने-सिखाने की इस प्रक्रिया में कुछ बच्चे पिछड़ जाते हैं या पिछड़े रहते हैं। अब यदि तीस बच्चों की कक्षा में से 5-7 बच्चे नहीं सीख पाते या सीखने की प्रक्रिया में पिछड़ते हैं तो इसके लिए केवल शिक्षक को ही दोषी क्यों माना जाए? क्योंकि मैं समझता हूँ, यदि ऐसे शिक्षक की शिक्षण योजना में कोई दोष होता तो तीस बच्चों की कक्षा में से बीस भी नहीं सीख पाते। या यह प्रतिशत बहुत कम होता। बहुत ही कर्मठ, लगनशील और जागरूक शिक्षकों की कक्षाओं तक में मैंने इस प्रकार के उदाहरण देखे हैं।

ऐसी स्थिति में विभिन्न शिक्षाशास्त्री, शिक्षक-प्रशिक्षक व शिक्षक-शिक्षा में काम करने वाले लोग कमोबेश ऐसे ही स्लो लर्नर या न सीख पाने वाले बच्चों का उदाहरण लेते हुए सम्पूर्ण दोष शिक्षकों पर मढ़ने लगते हैं। शिक्षक के शिक्षण तरीक़ों पर सवाल उठाने लगते हैं। उन्हें विभिन्न सिद्धान्तों के फेर में उलझाकर अलग तरीक़ों से काम करने की सलाह सुझाने लगते हैं। जबकि प्रत्येक शिक्षक का शिक्षण का अपना तरीक़ा, अपना ढंग और अपनी शैली होती है। जिसे वह शिक्षण कार्य करते हुए विकसित करता है। जिनका संकेत मैं ऊपर कर चुका हूँ, किसी बच्चे का सामाजिक वातावरण, घरेलू परिवेश, माता-पिता के आपसी झगड़े, बच्चे के साथ असहयोग की भावना, मित्र-गणों की संगति आदि कई अन्य कारण भी बच्चे के सीखने की प्रक्रिया में बाधक हो सकते हैं। किसी विषय का सीखा जाना बच्चे की रुचि व प्रवृत्ति पर भी तो निर्भर करता है। विषयवस्तु या अन्य क्रियाकलाप सीखने की किसी बच्चे में कितनी लगन व तत्परता है यह भी तो देखा जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान बागेश्वर, उत्तराखण्ड में प्रवक्ता पद पर कार्यरत डॉ. केवलानन्द काण्डपाल शैक्षिक दखल (वर्ष 6, अंक-10 जुलाई 2017) में 'सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं का एक मॉडल' नामक आलेख में लिखते हैं, "सीखना अत्यन्त व्यक्तिगत और व्यक्तिनिष्ठ अनुभव है, विद्यालय मानकों एवं मानदण्डों के आलोक में वस्तुनिष्ठता लाने का प्रयास करते हैं। इससे प्रत्येक बच्चे की ज्ञान सृजन में भागीदारी का असर पड़ता है। कक्षा-कक्ष में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दो अहम हिस्से हैं - पहला शिक्षण के माध्यम से ज्ञानार्जन और दूसरा अभ्यास के माध्यम से एक दक्षता हासिल करना और उसे सुदृढ़ करना। पहला तो शिक्षक के कार्य क्षेत्र में आता है और दूसरा विद्यार्थी द्वारा की गई मेहनत पर निर्भर करता है।"

इस बिन्दु से स्पष्ट है कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षार्थी की भी उतनी ही प्रतिभागिता की आवश्यकता होती है जितनी कि शिक्षक की है। यदि ऐसा नहीं होता तो इसका विपरीत परिणाम निकलना स्वाभाविक है। इसी बिन्दु की ओर संकेत करते हुए कबीर दास भी कहते हैं, "गुरु बिचरा क्या करे, जब सिक्खहि महिं चूक/भावे त्यों परबोधिए, बाँस बजाए फूँक।।" हालाँकि मैं यह अवश्य मानता हूँ कि एक शिक्षक का पढ़ाने-लिखाने का तरीक़ा भी बच्चे की सीखने की प्रक्रिया में बहुत उपयोगी होता है इसलिए उसे अपनी शिक्षण विधियों की हमेशा समीक्षा करते रहना चाहिए। और नवाचारी पद्धतियों व सीखने-सिखाने के सिद्धान्तों की भी समझ होनी चाहिए।

तीन महीने अज़ीम प्रेमजी स्कूल, उधमसिंह नगर में शिक्षण कार्य करने के पश्चात बच्चों के सीखने के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार का अनुभव भी हुआ। जैसे एक शिक्षक और बच्चे के बीच आपसी संवाद, कक्षा शिक्षण से जुड़ाव, स्कूल में उपस्थिति (शिक्षक और बच्चे दोनों) आदि का अवलोकन करके जब मैंने देखा तो मुझे 365 में से लगभग 200 दिन या इससे कम ही शिक्षक और बच्चों का आपसी व स्कूल से जुड़ाव दिखाई दिया। और वर्ष भर में औसतन तीन-साढ़े तीन घण्टे के लगभग ही एक दिन में शिक्षक का बच्चे को सहयोग मिल पाता है। और इन घण्टों में भी अलग-अलग समय में अलग-अलग शिक्षक बच्चे के साथ सहयोग, बातचीत व उसकी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का हिस्सा बन रहे होते हैं। और फिर प्रत्येक शिक्षक का बच्चों से बातचीत का ढंग व तरीका भी तो अलग-अलग होता है। इसलिए मैं सोचता हूँ कि इतना कम समय बच्चे के साथ व्यतीत करने के बाद हम उसके विचारशील, कल्पनाशील और जागरूक नागरिक बनने जैसी बड़ी-बड़ी आशाएँ और कल्पनाएँ क्यों पालने लगते हैं?

मुझे कई बार ऐसा भी एहसास होता है कि किसी स्कूल को समग्रता में देखने के कारण शिक्षक के पास शिक्षण से इतर भी बहुत-सा स्कूली काम होता है। जिसके कारण वह अपनी प्रभावी शिक्षण योजना बनाकर भी उस पर उतनी लगन से काम नहीं कर पाता जितना उसे करना चाहिए। फिर उसका बार-बार धैर्य टूटता है और वह हतोत्साहित होकर काम करने लगता है। जब मैंने इस मुद्दे पर कुछ शिक्षाविदों से बात की तो उन्होंने अक्सर इसे दूसरा मुद्दा (शिक्षण से इतर) बताकर अनदेखा कर दिया। मैं मानता हूँ कि जब मुद्दा शिक्षक, शिक्षा और शिक्षार्थी का है तो उसे शिक्षण से अलग करके क्यों देखा जाना चाहिए? आखिर इसका भी तो बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया पर कोई-न-कोई तो असर पड़ता ही होगा?

पता नहीं क्यों मेरे मन में ऐसी धारणा भी पैठ कर गई है कि

हम अपने बालकों का विकास विदेशी विद्वानों, शिक्षाशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों आदि के विचारों के आलोक में देखना चाहने लगे हैं। इंग्लैण्ड, अमेरिका, फिनलैण्ड जैसे देशों से अपने देश की शिक्षा व्यवस्था की तुलना करके देखने लगे हैं। उन देशों के तौर-तरीक़ों को अपनी शिक्षा व्यवस्था में आरोपित करने में लगे हुए हैं। और चाहते हैं कि हमारे बच्चों का सामाजिक-सांस्कृतिक विकास, उनका सीखना-समझना ऐसे ही देशों के विद्वानों के विचारों के सन्दर्भ में हो। जबकि अपने देश की स्थितियों-परिस्थितियों के कारण अभी यहाँ की शैक्षिक भूमि इतनी उपजाऊ नहीं हुई है कि इसमें उन सबके विचारों का बीज रोपित किया जा सके।

**मोहम्मद इसरार** इन दिनों अज़ीम प्रेमजी स्कूल, दिनेशपुर, उधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड में हिन्दी के शिक्षक हैं। इसके पहले वे लगभग ढाई वर्ष अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में भाषा के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यतर थे। उन्हें विभिन्न आयु समूह के बच्चों के काम करने का 14 वर्ष का अनुभव है। उन्होंने हिन्दी एवं संस्कृत में स्नातकोत्तर उपाधि ली है। साथ ही पी.एचडी. भी की है। उन्हें कहानियाँ लिखना अच्छा लगता है। उनसे mohd.israr@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

# जब राक्षस दोस्त बन जाए

पोम्पा घोषाल

अक्सर हम सभी ने अपनी दादी-नानी की कहानियों में 'राक्षस' शब्द सुना होता है और यह शब्द सुनते ही हमारे दिमाग़ में एक डरावनी तस्वीर उभरने लगती है। कुछ ऐसा ही अनुभव मैं आपके साथ साझा करने जा रही हूँ।

यह उन दिनों की बात है जब मैं इस स्कूल में बिलकुल नई-नई आई थी। मेरे लिए भी एक ऐसे स्कूल में अँग्रेज़ी का सहायक बनना नया अनुभव था जहाँ अँग्रेज़ी द्वितीय भाषा हो। मैंने देखा कि प्रत्येक बच्चे विशेषकर उच्च प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के लिए अँग्रेज़ी किसी 'राक्षस' से कम नहीं थी। इसकी एक वज़ह यह थी कि स्कूल के बाहर और उनके आसपास के परिवेश में कोई अँग्रेज़ी में बात नहीं करता था (जबकि किसी भी भाषा को सीखने के लिए उसे सुनना सबसे पहला चरण होता है।) तो, यदि आपकी किताब में कहानियाँ व लेख हों और बच्चा प्रत्येक वाक्य में चार या पाँच से ज़्यादा शब्द पढ़ने-समझने में असमर्थ हो तो पूरे पाठ को समझना वाकई में एक चुनौती बन जाता है। मैंने देखा कि बच्चों के अँग्रेज़ी से भयभीत होने की एक वज़ह यह भी है।

मुझे अपनी कक्षा में कई मुरझाए चेहरे देखने को मिलते। वे पूछते कि मैं उन्हें यह डरावना विषय क्यों पढ़ाना चाहती हूँ।

इस धारणा को कैसे दूर किया जाए? यह एक बड़ी चुनौती थी क्योंकि यह धारणा बच्चों को अँग्रेज़ी के साथ सहज नहीं होने दे रही थी। अब इस समस्या से कैसे निपटा जाए? यह मेरे लिए एक बड़ा प्रश्न था। फिर भी किसी तरह मैंने शुरुआत की और रोज़ाना मैं शब्दों या कुछ उदाहरणों के माध्यम से उन्हें प्रेरित करने का प्रयास कर रही थी। लेकिन मैंने देखा कि अभी भी बच्चे अपने-आप अँग्रेज़ी पढ़ने और लिखने से कतरा रहे हैं। कक्षा सात के तीस बच्चों में से केवल दो बच्चे ऐसे थे जो अँग्रेज़ी पढ़ पाते थे, वह भी हिचकते हुए। इन दोनों बच्चों को थोड़ा प्रोत्साहित करते हुए मैंने कक्षा में छह बच्चों को अँग्रेज़ी पढ़ने के लिए तैयार किया। फिर मैंने कुछ मिश्रित समूह बनाए जिसमें वे लोग अँग्रेज़ी पढ़ने में एक-दूसरे की मदद कर सकें। धीरे-धीरे कक्षा के दो-तिहाई बच्चे ज़ोर से बोलकर पढ़ने में समर्थ हो गए। अँग्रेज़ी पढ़ने को लेकर अब उनमें थोड़ा आत्मविश्वास आ गया था। उन्हें स्वतंत्र रूप से पढ़ते देखकर मुझे ख़ुशी हुई।

लिखना व बोलना अब भी चुनौती बना हुआ था। बच्चे हमेशा मुझ से बने-बनाए उत्तरों की माँग करते। वह उत्तर खोजने की कोशिश भी नहीं करते। कोशिश तो दूर वह कभी यह सोचते ही नहीं कि वह अपने-आप भी उत्तर लिख सकते हैं। मैं उनके अन्दर यह आत्मविश्वास पैदा करने के लिए संघर्ष कर रही थी।

ख़ुशक़िस्मती से मुझे एक रास्ता मिल गया। हम अपनी पुस्तक के पाठ 'एलिस इन वंडरलैंड' पर पहुँच गए थे। यह एक बहुत ही दिलचस्प कहानी है जिसका पहला भाग कक्षा 6 में, दूसरा भाग कक्षा 7 में व तीसरा भाग कक्षा 8 में दिया गया है। मैं कक्षा 7 को पढ़ा रही थी। इसलिए मैंने इस पाठ की शुरुआत कक्षा 6 व 7 में दी गई कहानी के सारांश से की। लेकिन कहानी अभी अधूरी थी। हमारे विद्यालय में आठवीं कक्षा न होने के कारण कहानी का तीसरा भाग हमारे पास उपलब्ध नहीं था। हालाँकि हमारे पुस्तकालय में एलिस इन वंडरलैंड पुस्तक उपलब्ध थी लेकिन बच्चों को वह बहुत बड़ी और पढ़ने में मुश्किल लग रही थी। तो मेरी एक सहकर्मी जो कक्षा 6 को पढ़ाती हैं और मैंने मिलकर बच्चों को इस कहानी पर आधारित फ़िल्म दिखाने की योजना बनाई। मेरी सहकर्मी ने पूछा कि क्या हमें फ़िल्म हिन्दी में दिखानी चाहिए। लेकिन मुझे लगा कि अगर वे अँग्रेज़ी में फ़िल्म को देखेंगे तो उनके पास एक अवसर होगा ज़्यादा-से-ज़्यादा अँग्रेज़ी समझने की कोशिश करने और समझने का। फिर हमारे जिला संस्थान में यह फ़िल्म अँग्रेज़ी में दिखाई गई। बच्चों को फ़िल्म देखने में बहुत मज़ा आया और वे एलिस की कहानी समझ गए। वे फ़िल्म को अपनी पाठ की कहानी से जोड़ पा रहे थे और उन्होंने फ़िल्म और अपनी पुस्तक की कहानी में कई अन्तरों को भी पहचाना। धीरे-धीरे जैसे-जैसे वे कहानी से जुड़ रहे थे, वे कहानी और उसके चरित्रों के बारे में चर्चा करने के लिए अँग्रेज़ी की कक्षा में आने के लिए पर्याप्त रुचि लेने लगे थे। अभी तक हम कहानी पढ़ने-सुनाने और उसके स्वप्न वाले दृश्य की चर्चा करने में दस दिन बिता चुके थे। स्वप्न वाले दृश्य पर बच्चों ने अपने व्यक्तिगत विचार भी रखे कि 'बड़े होकर मैं क्या बनना चाहता हूँ।'

मैंने देखा कि यह पाठ हमारे लिए किसी 'जादुई दौर' की तरह था जिसने मेरी कक्षाओं को दिलचस्प बना दिया था। इसलिए मैंने कुछ और गतिविधियों के साथ इसे जारी रखने का सोचा। मैंने बच्चों से कहा कि क्यों न हम फ़िल्म की कहानी का अभिनय करें। वे कहने लगे, 'हम कैसे कर सकते हैं? हम

डायलॉग याद नहीं कर सकते।' मैंने कहा, 'हम अपने खुद के डायलॉग बना सकते हैं और एक नाटक तैयार कर सकते हैं।' वे बोले, 'हाँ यह हम कर सकते हैं लेकिन हिन्दी में।' 'लेकिन मुझे तो डायलॉग अँग्रेज़ी में ही चाहिए', मैंने कहा। शुरू में तो वे कहने लगे कि यह तो बहुत मुश्किल होगा लेकिन बाद में इस शर्त पर वो सहमत हो गए कि डायलॉग मैं लिखूँगी। इस पर मैंने कहा 'लेकिन यदि डायलॉग मैं लिखूँगी तो तुम्हें उन्हें याद करना पड़ेगा और वह ज़्यादा मुश्किल होगा। यदि हम साथ मिलकर स्क्रिप्ट लिखें तो आसानी होगी।' वे मान गए।

अब मुझे वह स्टेशन मिल गया था जहाँ से मुझे अपनी ट्रेन पकड़नी थी। बच्चे अपने नाटक के लिए स्क्रिप्ट लिखने को लेकर बेहद उत्सुक थे। सबसे पहले उन्होंने शब्दों का अनुवाद किया। मैं उनके सभी सुझावों को बोर्ड पर लिखती। उदाहरण के लिए उन्होंने को, क्या, पसन्द, पूछेगी, तुम्हें, सपना आदि के लिए अँग्रेज़ी शब्द खोज लिए थे।

स्क्रिप्ट लिखने की इस गतिविधि ने बच्चों को अँग्रेज़ी सीखने के लिए उत्साही बना दिया था। स्क्रिप्ट लिखने के दौरान उन्होंने कई नए शब्द और व्याकरण के कुछ नियम भी सीखे। स्क्रिप्ट पूरी होने में तकरीबन पन्द्रह दिन का समय लगा। इस दौरान बच्चे बेचैनी से अँग्रेज़ी के पीरियड का इन्तजार करते। अक्सर वे अगले सीन के लिए खुद को तैयार रखते और स्क्रिप्ट में बदलावों के लिए अपनी कल्पना का उपयोग करते।

स्क्रिप्ट लिखने के बाद बच्चों ने नाटक खेलने की तैयारियाँ शुरू कीं। आधे बच्चे नाटक खेलने का अभ्यास करने में लगे थे और बाकी के आधे नाटक के लिए आवश्यक सामग्रियाँ तैयार करने में। उन्होंने पेड़, घास, ताज और कार्ड चार्ट पेपर से बनाए। ऐसा लग रहा था जैसे सभी बच्चे इस नाटक का हिस्सा हों। इतना अच्छा सामूहिक कार्य मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था। सामूहिक कार्य में अद्भुत समन्वय का यह एक नमूना था। यह सब तैयारियाँ करने में दस दिन निकल गए।

और आखिरकार वह दिन आ ही गया। उस दिन शनिवार था जब कक्षा सातवीं के सभी बच्चे सबके समक्ष अपना नाटक प्रस्तुत करने के लिए तैयार थे। पूरे स्कूल ने नाटक का आनन्द उठाया और बच्चों ने खूब प्रशंसा बटोरी जिससे उनका आत्मविश्वास बढ़ा।

इस विशेष गतिविधि ने उनकी शब्दावली, वाक्य संरचना, सोचने, बोलने और सुनने के कौशल को बढ़ाने और पढ़ने व कल्पनाओं को लिखने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके बाद बच्चे अँग्रेज़ी की कक्षा में उसी तरह ध्यान देने लगे जैसे कि वे अन्य विषयों की कक्षाओं में देते थे और विषय को समझने और खुले मन से उसमें शामिल होने की कोशिश करने लगे। अब वे स्वत: ही अँग्रेज़ी पढ़ने-लिखने का प्रयास करने लगे। और यही नहीं एक कदम आगे बढ़कर उसे समझने का प्रयास भी करने लगे। ऐसा लगता जैसे कि वह 'राक्षस' अब उनका दोस्त बन गया हो जिसके साथ बात करना, मस्ती करना और खेलना वे पसन्द करते।

इस प्रक्रिया के दौरान मैंने भी कुछ सीखा। मैंने देखा कि डर ही वह प्रमुख चीज़ है जो हमें किसी भी भाषा को सीखने से रोकती है। एक विदेशी भाषा होने के नाते हमारे दिमाग़ में अँग्रेज़ी की छवि एक राक्षस जैसी बन गई है। सबसे पहले तो हमें खुद को इसके अनुकूल बनाना चाहिए। फिर हमें खुद को वातावरण में सहज बनाने का प्रयास करना चाहिए जहाँ यदि हम कोई ऐसा वाक्य बोल दें जो व्याकरण की दृष्टि से सही न हो तो हम इस बात को लेकर दूसरों की प्रतिक्रियाओं की परवाह न करें। केवल तभी इस 'राक्षस' को भगाना सम्भव हो पाएगा ।

**पोम्पा घोषाल** अप्रैल 2016 से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़ में बतौर शिक्षक कार्यरत हैं। उन्होंने रवि शंकर विश्वविद्यालय रायपुर से गणित में स्नातक, अँग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. और बी.एड. किया है। उन्होंने 1997 में निजी स्कूल से अपना अध्यापन कैरियर प्रारम्भ किया और कई स्कूलों में गणित, विज्ञान व अँग्रेज़ी के शिक्षक के तौर पर कार्य किया। वह सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रुचि रखती हैं। उनसे pompa.ghoshal@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : कविता तिवारी

# सामाजिक नज़रिए को बदलना

प्रतिभा कटियार

'सरकारी शिक्षक काम नहीं करते, बड़े मज़े की नौकरी है, छुट्टियाँ ख़ूब होती हैं, ख़ूब स्वेटर बुने जा सकते हैं, मूँगफलियाँ खाई जा सकती हैं इस नौकरी में, हफ़्ते में एक दिन भी पढ़ा दिया तो बच्चों का कल्याण होना तय है क्योंकि उनके लिए तो वह एक दिन ही काफ़ी है। कौन-सा उन्हें पढ़-लिखकर लाट गवर्नर बनना है।'

ऐसी तमाम धारणाएँ अब भी आसपास देखने को मिलती हैं। बच्चियों को बड़े होकर टीचर बनने की सलाह इसीलिए भी दी जाती है कि इस नौकरी में आराम बहुत है और इसके साथ घर आसानी से सम्भाला जा सकता है। समय बदल रहा है, लेकिन शिक्षा और शिक्षकों को लेकर समाज में व्याप्त मान्यताएँ भी बदल रही हैं क्या? अन्य राज्यों का तो पता नहीं लेकिन उत्तराखण्ड के सन्दर्भ में अपने अनुभवों के आधार पर इतना तो कह सकती हूँ कि ये निरी बासी हो चुकी मान्यताएँ हैं। शिक्षकों के पास अब वक़्त नहीं है कि सर्दियों की नर्म धूप में मूँगफली खाते हुए दिन काट सकें न ही उनके भीतर ऐसी कोई इच्छा है। वे जूझ रहे हैं कि किस तरह बच्चों के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त बिताया जा सके। किस तरह उन्हें पढ़ाने के नए-नए ढंग जाने जा सकें।

उत्तराखण्ड की भौगोलिक परिस्थितियाँ अन्य राज्यों के मुक़ाबले बहुत अलग हैं। इन परिस्थितियों का अन्दाज़ा गूगल सर्च करके दिल्ली या बेंगलूरु में बैठकर नहीं लगाया जा सकता। यह बिलकुल उसी तरह है जैसे नदी के किनारे बैठकर नदी की धार पर बात करना। नदी की धार पर बात करने के लिए नदी की धार में उतरना होता है उसी तरह पहाड़ के दूर-दराज के गाँवों के सरकारी स्कूलों का हाल जानने के लिए वहाँ जाना ज़रूरी है।

स्कूल पहुँचते-पहुँचते साँस फूलने को होती थी। यूँ लगता अब एक क़दम भी चला नहीं जाएगा लेकिन फिर ध्यान आता कि जिस स्कूल में एक बार जाने में हाँफ रही हूँ वहाँ शिक्षक रोज़ इसी तरह इन्हीं रास्तों से इतनी ही दूरी तय करके जाते हैं। बच्चे भी जाते हैं। क्या शिक्षा के मुद्दों पर विमर्श करने वालों के अनुभव में ये रास्ते, ये दूरियाँ हैं, ये मुश्किलें हैं। यह तब जबकि ये रास्ते बहुत अच्छे हैं, कम-से-कम रास्ते तो हैं पैदल के सही, पथरीले-कँटीले ही सही, लम्बे ही सही। उन स्कूलों का भी ख़्याल आता है, जहाँ रास्ते ही नहीं हैं।

इन स्कूलों में पहुँचना ही उपलब्धि-सी मालूम होती है। इसके बाद स्कूल का संसार खुलता है। बच्चे एकदम स्मार्ट, अँग्रेज़ी-हिन्दी दोनों में बात करते (कुछ स्कूलों में), बात करने में एकदम मुक्त। सवाल ख़ूब करते हैं। उनके पास यूनिफार्म है, मिड-डे मील एकदम स्वादिष्ट और ताज़ी सब्ज़ियों से बना हुआ। पढ़ाई के नए-नए तरीक़े ईजाद करते शिक्षक हैं जो बड़ी मोहब्बत से बच्चों के साथ कुछ-न-कुछ नया करते रहते हैं।

पर्यावरण अध्ययन के लिए जंगलों को निकल जाते हैं, गुरुजी को कुछ नई जानकारी बटोरकर लाकर देते हैं। कबीर-रहीम के दोहों की अन्ताक्षरी सुन लीजिए। अहा...क्या सुर, क्या समझ। हर दोहे का अर्थ पता है और ये प्राइमरी के बच्चे हैं। प्राथमिक विद्यालय सरखेत का नन्हा राहुल क्लास 1 में पढ़ता है जो 5 किमी पैदल चलकर आता है जिसके रास्ते में नदी भी पड़ती है। उसका स्कूल आने का उत्साह कोई तो कहानी कहता है। ऐसे न जाने कितने राहुल हैं।

मतलब साफ़ है कि बच्चों का स्कूल आने का मन कर रहा है और इस तरह स्कूल अपने पहले मक़सद में तो सफल हो ही चुका है। इसके बाद के बहुत सारे मक़सद स्कूल में जाने पर पूरे होने की प्रक्रिया में नज़र आते हैं। मैं उत्तराखण्ड के अलग-अलग ज़िलों के जिन स्कूलों में गई हूँ, वहाँ शिक्षकों को तमाम चिन्ताओं से बेपरवाह पाया। वे अपने काम का आनन्द ले रहे हैं। उनका सुख है बच्चों की आँखों की चमक।

जब मैं पहली बार 2012 में उत्तरकाशी के एक स्कूल जा रही थी और अपनी फूलती हुई साँस के चलते जगह-जगह बैठ जाती थी तो शिक्षिका जो हमारे साथ थीं कहतीं, 'आप एक बार जैसे ही स्कूल पहुँचेंगी सारी थकान भूल जाएँगी।' मुझे तब उनकी बात पर यक़ीन नहीं हुआ था लेकिन स्कूल पहुँचकर लगा सचमुच अब कोई थकान नहीं। जैसे किसी ख़्वाब के भीतर पाँव रख दिया हो। इतना सुन्दर भी कोई स्कूल होता है क्या!

मैं ख़ुद भी सरकारी स्कूल में पढ़ी हूँ लेकिन ऐसे स्कूल तो कल्पना में भी नहीं थे। बच्चे अपनी मौलिकता के साथ व्यवहार करते हैं। पढ़ने में उनका मन लगता है और वे ख़ूब सारे सवाल करते हैं।

बहुत सारे सरकारी स्कूलों में जाने के बाद मुझे एक बात पक्के तौर पर समझ में आई और बेहद पसन्द आई और वह

है सरकारी स्कूलों के बच्चों का आत्मविश्वास और उनकी मौलिकता। ये किसी फैक्ट्री में तैयार किए गए बच्चे जैसे नहीं लगते। इनका अपना महसूसना है, अपनी तरह से ये व्यवहार करते हैं, शरारत करते हैं। शिक्षकों से दोस्ताना तरह से पेश आते हैं और कभी-कभी शिक्षकों को बताते हैं कि वे जो बता रहे हैं वो ठीक नहीं है ठीक तो कुछ और है। उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से निखर रहा है। किसी तयशुदा खाँचे में फिट नहीं हो रहे हैं वे। जाहिर है इस तरह की स्वतंत्रता को सहेजने का श्रेय शिक्षकों का ही है।

यानी शिक्षक अब मूँगफली खाने और स्वेटर बुनने वाली इमेज से बाहर आ चुके हैं। वे पूरी ईमानदारी से पढ़ाते हैं। एनसीएफ के बरक्स अगर देखें तो आनन्दशाला की ओर तो सरकारी स्कूल ही अग्रसर हो रहे हैं भले ही बहुत कम हो पा रहा है ऐसा। लेकिन इन स्कूलों ने, शिक्षकों ने यह तो तय किया ही है कि चाह लो तो मुश्किल कुछ भी नहीं है।

जहाँ तक शिकायत करने वाले शिक्षकों का सवाल है उनकी संख्या भारी है, उनकी शिकायतें और समस्याएँ भी वाजिब होंगी ही। कुछ शिक्षकों के अपने काम से मोहब्बत करने से, बच्चों के साथ, समुदाय के साथ रिश्ता बनाने और हमारे लिए निराशा और नकारात्मकता के माहौल में कुछ अच्छा होते हुए देखने के सुख का यह अर्थ भी नहीं माना जा सकता कि सूरत-ए-हाल बदल चुका है। मामला 'इस हो पा रहे' और 'न हो पा रहे' के बीच के रास्ते को तय करने का है। जो शिक्षक अपने काम को प्यार की तरह अंजाम दे रहे हैं उनके पीछे कौन-सी ऊर्जा है और क्या उस ऊर्जा को, उन कारणों को समझकर उन्हें विस्तार दिया जा सकता है।

प्राथमिक विद्यालय सरखेत की शिक्षिका हेमलता कहती हैं कि, 'इतनी दूर से इतना लम्बा सफर तय करके हमारे पास बच्चे आते हैं ऐसे में हम उनके वक़्त का ठीक से प्रयोग नहीं करेंगे तो हमको तो पाप लगेगा न?' उन्हें टपकती हुई छत की भी फिक्र है, मिड-डे मील की क्वालिटी की भी और बच्चों के लर्निंग लेवल की भी। प्राथमिक विद्यालय द्वारा की दीप्ति रमोला कहती हैं, 'हम कितना ही काम कर लें हमारी इमेज वही है स्वेटर बुनने वाली। लेकिन अब हँसी आती है लोगों की बातों पर। हमें साँस लेने की फुर्सत नहीं होती स्वेटर बुनना तो बीते जमाने की बात हुई। लेकिन अब भी किसी शादी या फंक्शन में जाती हूँ तो लोग हँसकर पूछते हैं मैडम इस साल कितने स्वेटर बन गए? पहले गुस्सा आता था अब हँस देती हूँ।'

सरकारी स्कूलों में तो बहुत कुछ बदल रहा है, जो नहीं बदल रहा है उसे बदलने के प्रयास भी जारी हैं लेकिन सवाल यह है कि क्या हमारा सरकारी स्कूलों को देखने का नज़रिया बदल रहा है? क्या हमारी सरकारी शिक्षकों के प्रति राय बदल रही है? पहले हमें लगता था स्कूलों से शिक्षक ग़ायब रहते हैं। अब रिसर्च ने हमारी इस मान्यता की पोल खोल दी है। ऐसा ही और भी बहुत कुछ है जिसका सामने आना अभी बाकी है।

बदलना सिर्फ शिक्षकों को नहीं है, बदलना समाज के उनके प्रति रवैये को भी है। भरोसा करना ज़रूरी है।

**प्रतिभा कटियार** अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, देहरादून में भाषा की स्रोत व्यक्ति हैं। वे फ़ाउण्डेशन की प्रकाशन टीम का भी हिस्सा हैं। साथ ही फ़ाउण्डेशन की पत्रिका 'प्रवाह' और 'उम्मीद जगाते शिक्षक' की सम्पादकीय टीम में भी हैं। वे कहानी लेखक, कवि और ब्लॉगर हैं। उनसे pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

# पढ़ने की आदत को प्रोत्साहित करने में पुस्तकालयों की भूमिका

राकेश रौथान

हमारा स्कूल 2012 में उत्तराखण्ड के ऊधम सिंह नगर के दिनेशपुर इलाके में शुरू हुआ। स्कूल में बारह शिक्षक और लगभग अस्सी विद्यार्थी थे। शुरुआत में हमारे स्कूल में सीमित संसाधन थे और हमने उन्हीं का उपयोग करके अच्छे से अच्छा कार्य करने की कोशिश की। उदाहरण के लिए हमने बच्चों के पढ़ने के लिए उत्तराखण्ड राज्य की पहली से पाँचवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तकों तथा एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकों का प्रयोग किया।

फिर हमने सोचा कि हमारे स्कूल में पाठ्यपुस्तकों के अलावा कहानी की किताबें भी होनी चाहिए और तब हमने विद्यार्थियों के लिए कहानी की नई किताबें खरीदने का फैसला किया। ज़िला संस्थान के पुस्तकालयाध्यक्ष ने प्रारम्भिक शिक्षार्थियों के लिए किताबें चुनने में हमारी मदद की। हमने अपने विद्यार्थियों के लिए पुस्तक मेलों से भी पुस्तकें खरीदीं।

हमारे पिछले स्कूल भवन में एक बड़ा हॉल था जिसका उपयोग हम पुस्तकें बाँटने के लिए करते थे क्योंकि किराए के उस भवन में पुस्तकालय के लिए अलग से कोई कमरा नहीं था। यह हॉल आम पुस्तकालयों जैसा नहीं था क्योंकि इसमें शेल्फ, कुर्सी-मेज़ और पढ़ने के कोने नहीं थे, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हमने अपने विद्यार्थियों को पढ़ने के अवसर नहीं दिए। हमने उनके पढ़ने के लिए आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था की। पुस्तकालय के कामकाज के लिए हमने कोई विशिष्ट योजना नहीं बनाई थी। शुरू से ही विद्यार्थियों को अपनी पसन्दीदा किताबों का चयन करने की छूट दी गई थी, भले ही वे किताबें उनके कक्षा के स्तर की न हों। उन्हें अन्य लोगों द्वारा चुनी हुई किताबें पढ़ने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है - उन्हें किताबों को चुनने की पूरी स्वतंत्रता दी गई है। उस समय 65 प्रतिशत से अधिक विद्यार्थियों ने किताबें पढ़ीं और ये किताबें घर ले जाकर पढ़ने के लिए भी दी जाती थीं। हालाँकि हम निश्चित रूप से यह तो नहीं कह सकते कि उनमें से कितनों ने गम्भीरता के साथ किताबें पढ़ी होंगी, लेकिन उन्होंने इन किताबों को देखा ज़रूर होगा और पन्ने भी पलटे होंगे क्योंकि वे कहानियों को अपने शब्दों में सुना पा रहे थे।

## प्रक्रिया

हम किताबों को ज़मीन पर एक कतार में रखते हैं ताकि सभी विद्यार्थी उन्हें देख सकें। स्कूल ख़त्म होने के बाद विद्यार्थी आकर इन किताबों को देखते हैं। वे किताब हाथ में लेते हैं, पन्ने पलटते हैं, दूसरी किताबें देखते हैं और अन्त में अपनी पसन्द की किताब चुनते हैं। अपनी कक्षा के लिए नियत नोटबुक में वे खुद अपनी चुनी हुई किताबों का विवरण लिखते हैं और अपने द्वारा ली गई किताबों के रिकॉर्ड के रखरखाव की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की है। शिक्षक उनका मार्गदर्शन और सहायता करते हैं। इस प्रक्रिया में सभी शिक्षक शामिल होते हैं। हम एक मेज़ पर समाचार पत्र भी रखते हैं ताकि दोपहर के भोजन के समय विद्यार्थी सामूहिक रूप से उसे पढ़ें और अपनी रुचि के अनुसार समाचारों पर चर्चा कर सकें। हमारे पास प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए कहानी की करीब 400 किताबें हैं। जिन विद्यार्थियों को यह प्रक्रिया मुश्किल लगती है वे शिक्षकों या बड़े विद्यार्थियों की मदद ले सकते हैं। पुस्तकालय चलाने की इस प्रक्रिया में सभी शिक्षक शामिल हैं।

इसके अलावा हम विद्यार्थियों से किताबों के उपयोग, देखभाल और उन्हें अच्छी हालत में रखने के बारे में भी बात करते हैं। शुरू में हम शिक्षक ही किताबों के फटे हुए पन्नों को सिलने और चिपकाने का काम करते थे लेकिन बाद में विद्यार्थियों ने शिक्षकों की मदद से यह काम करना शुरू कर दिया। हमने 'किताबों के अस्पताल' की संकल्पना भी शुरू की है। जिन किताबों के पन्ने फट गए हैं और जिन पर जिल्द चढ़ाने की ज़रूरत है या जिन्हें सिलना है - ऐसी सारी किताबों को एक बक्से में रख दिया जाता है ताकि उनकी मरम्मत की जा सके। यह बक्सा किताबों के समीप ही रखा गया है। सत्र के समाप्त होने से पहले हम किताबों के रिकॉर्ड भी देखते हैं जिससे हमें यह पता चल सके कि ऐसी कितनी किताबें हैं जो अच्छी हालत में हैं तथा जिनका उपयोग किया जा सकता है और कितनों की मरम्मत की जानी है ताकि अगले सत्र में उनका उपयोग हो सके। इसके आधार पर हम पुस्तकालय के लिए नई किताबें खरीदने का निर्णय लेते हैं।

## अवलोकन

शिक्षक होने के नाते हम न केवल पुस्तक पढ़ने के महत्त्व को समझते हैं बल्कि उनकी समीक्षा की अहमियत भी जानते हैं। इसलिए हमने कहानी की किताबें पढ़ने और जो पढ़ा है उस पर चर्चा करने का दैनिक अभ्यास भी शुरू किया है। यह हमारे आत्मविकास की प्रक्रिया का हिस्सा भी है। आम तौर पर

हम ऐसा अपने अँग्रेज़ी बोलने के सुधार के लिए करते हैं और इससे हमें बहुत लाभ भी हुआ है। इससे हमें लोगों के सामने एक व्यवस्थित तरीक़े से अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

2015 में जुलाई के महीने में हम अपने स्कूल के स्थायी भवन में चले गए। यह भवन बड़ा है और यहाँ बुनियादी ढाँचा भी बहुत अच्छा है। इस नए परिसर में बहुत सारी सुविधाएँ हैं और पुस्तकालय के लिए एक अलग और बड़ा-सा कमरा भी है। हमारे पुस्तकालय में किताबों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। ज़िला संस्थान के पुस्तकालयाध्यक्ष स्कूल के पुस्तकालय के लिए किताबें चुनने और उन्हें प्राप्त करने में हमारी मदद करते हैं।

संसाधनों के बढ़ने और पुस्तकों की उपलब्धता से विद्यार्थियों को अपना काम करने में आसानी हुई है। अब पुस्तकालय में विद्यार्थियों की आयु और स्तर की कई किताबें उपलब्ध हैं। हमने कोशिश की है कि विषय सम्बन्धी अध्ययन सामग्री भी पुस्तकालय में रखी जाए ताकि विद्यार्थी उनका उपयोग अपने विषयों के सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में कर सकें।

कुछ समस्याएँ भी सामने आईं। हमने देखा कि जब विद्यार्थियों ने नए पुस्तकालय का उपयोग करना शुरू किया तो उसके कुछ महीनों बाद पुस्तकालय का कार्य सुचारू रूप से नहीं चल रहा था। शेल्फ पर किताबें अव्यवस्थित रूप से रखी गई थीं। किताबों का रिकॉर्ड बनाए रखना मुश्किल हो रहा था। किताबों के खोने और फटने की संख्या बढ़ रही थी। अब हमारे स्कूल में पहली से दसवीं तक की कक्षाएँ हैं। तो हमें लगा कि अलग-अलग आयु वर्ग के विद्यार्थियों की रुचियाँ और पसन्द भी अलग होती हैं। अतः किताबों को चुनते समय हमें इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए।

नए पुस्तकालय में हम किताबों को विषयानुसार व्यवस्थित करते हैं ताकि विद्यार्थियों को अपनी ज़रूरत के हिसाब से किताबें खोजने में आसानी हो। हिन्दी कहानियों, अँग्रेज़ी कहानियों, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि की किताबों, पत्रिकाओं और समाचार पत्रों के लिए अलग-अलग शेल्फ हैं। किताबें लेते समय तो विद्यार्थी सही शेल्फ से किताब ले लेते हैं लेकिन पीरियड समाप्त होने के बाद वे उन्हें अन्य किसी भी शेल्फ में रख देते हैं। जब अगली कक्षा पुस्तकालय में आती है तो उन्हें अपनी ज़रूरत की किताबें ढूँढ़ने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है क्योंकि ये किताबें सही स्थानों में नहीं रखी होती हैं।

अब हमारे स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर 350 हो गई है, पहली से दसवीं तक कक्षाएँ हैं और पन्द्रह शिक्षक हैं। पुस्तकालय में किताबों की संख्या भी बढ़ गई है। शिक्षकों को अपने विषय सम्बन्धी कक्षा प्रक्रियाओं और कार्यों में अधिकाधिक समय देना होता है। इसलिए पुस्तकालय के कामों में वे अधिक सहयोग नहीं दे पाते। सक्रिय और नियमित पाठकों की संख्या आनुपातिक रूप से नहीं बढ़ी है और जो विद्यार्थी किताबों में रुचि दिखाते भी हैं वे भी छोटी कहानियों की किताब पहले चुनते हैं। बहुत कम विद्यार्थी ऐसे हैं जो सन्दर्भ पुस्तकें और गम्भीर पठन सामग्री का चयन करते हैं।

लेकिन चूँकि हम यह जानते हैं कि विद्यार्थियों में पढ़ने की आदत का विकास करने में पुस्तकालय कितने महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए हमने तय किया है कि हम अपनी कक्षाओं में रोज़ एक पीरियड पुस्तकालय के लिए रखें। विद्यार्थियों को रोज़ किताबें पढ़ने का मौका मिलता है। अँग्रेज़ी और हिन्दी की किताबों को विद्यार्थियों की कक्षा और आयु के हिसाब से छाँटकर एक महीने तक उनकी कक्षाओं में रखा जाता है ताकि विद्यार्थी प्रतिदिन विभिन्न किताबें पढ़ सकें। यह तो स्वाभाविक है कि बार-बार उन्हीं किताबों को पढ़ने से विद्यार्थी ऊब जाएँगे। इसलिए यह तय किया गया कि निश्चित अवधि के बाद उन किताबों की जगह दूसरी किताबें रखी जाएँ।

हमने यह कोशिश भी की है कि किताबों को प्राथमिक कक्षा स्तर, उच्च प्राथमिक कक्षा स्तर, हाई स्कूल स्तर, हिन्दी कहानियों, अँग्रेज़ी कहानियों आदि के आधार पर अलग-अलग शेल्फों में रखा जाए। विषयों के बीच अन्तर करने के लिए काग़ज़ की रंगीन पर्चियाँ लगाई जाती हैं। प्राथमिक कक्षा स्तर की किताबों को निचली शेल्फ, उच्च प्राथमिक कक्षा स्तर की किताबों को बीच वाली शेल्फ और हाई स्कूल स्तर की किताबों को सबसे ऊपरी शेल्फ में रखा जाता है। यह प्रणाली कुछ समय तक तो अच्छी तरह से काम करती है लेकिन बाद में किताबें फिर इधर-उधर हो जाती हैं।

**योजना**

एक बार पढ़ने की प्रक्रिया ठीक से जम जाए तो हमने कुछ और गतिविधियाँ शुरू करने का निर्णय लिया है जैसे कहानियाँ साझा करना, कहानियाँ पढ़कर सुनाना और उन पर चर्चा करना आदि ताकि विद्यार्थी विचारों को अभिव्यक्त करने और विचारों को शब्दों में व्यक्त कर पाने में सक्षम हो सकें।

- हमने एक पुस्तकालय समिति भी बनाई है जो पुस्तकालय के सुधार से सम्बन्धित बातों पर चर्चा करती है और इससे विद्यार्थियों के पढ़ने की क्षमता में सुधार लाने में मदद मिलेगी। हर साल कुछ शिक्षक पुस्तकालय की ज़िम्मेदारी सम्भालते हैं।

- हम एक ऐसी व्यवस्था बनाए रखने की कोशिश करते हैं जिससे प्रत्येक विद्यार्थी आसानी से पुस्तकालय में जा सके और उसे अपनी ज़रूरतों व रुचि के अनुसार किताबें खोजने का मौक़ा मिले।
- विभिन्न गतिविधियों के लिए एटलस और शब्दकोशों का उपयोग करने से विद्यार्थियों का शब्द भण्डार बढ़ता है जिससे प्रवाह के साथ पढ़ने में भी सहायता मिलती है।
- साझा करने और चर्चा करने से न केवल वह विद्यार्थी प्रेरित होता है जो किताबों को सही तरीक़े से पढ़ता है बल्कि दूसरे विद्यार्थी भी कक्षा के सामने प्रस्तुतिकरण के लिए प्रेरित होते हैं।
- यदि विद्यार्थियों का किताबों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो तो वे अपनी ख़ुद की कहानियाँ व रोल प्ले के आलेख लिख सकते हैं और प्रार्थना सभा में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह के सामने धाराप्रवाह तरीक़े से पढ़ सकते हैं।
- हम पुस्तकालय के सभी पहलुओं में विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्चित करना चाहते हैं।

इस तरह से हमने यह कोशिश की है कि विद्यार्थियों में पुस्तकालय की किताबों और अन्य उपलब्ध साधनों के प्रति ज़िम्मेदारी विकसित हो और वे किताबों से प्रेम करना सीखें।

**राकेश रौथान** उत्तराखण्ड के ऊधम सिंह नगर में स्थित अज़ीम प्रेमजी स्कूल में स्कूल की शुरुआत से ही सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। उन्होंने एम.एड. और एम.ए. (भूगोल) की डिग्री प्राप्त की है। अज़ीम प्रेमजी स्कूल से पहले वे ईडन मोंटेसरी स्कूल, चमोली, गढ़वाल और सेंट थेरेसा कॉन्वेंट स्कूल, श्रीनगर, गढ़वाल में कार्यरत थे। उनसे rakesh.rauthan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

# गणित की कक्षा

सउद अहमद ख़ान

राधाकृष्णन कहते हैं कि, "समाज में अध्यापक का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सामाजिक परम्पराएँ तथा तकनीकी कौशल पहुँचाने का केन्द्र है और ज्ञान के प्रकाश को प्रज्वलित रखने में सहायक होता है।" शिक्षक को सभी शैक्षिक कार्यक्रमों की आधारशिला या धुरी कहा जाता है।

इस लेख में शिक्षक के द्वारा गणित के शिक्षण में छात्राओं की रुचि को जागृत करने के प्रयास को लिखने की कोशिश की है।

मैं सउद पिछले पाँच वर्षों से अज़ीम प्रेमजी विद्यालय में कक्षा 6, 7 और 8 में गणित का अध्यापक हूँ। हर कक्षा में 3-4 बच्चे गणित में रुचि कम रखते हैं। दो साल पहले कक्षा 6 की तीन छात्राएँ जिनकी गणित में रुचि कम होने के साथ ही उनका व्यवहार भी सहपाठी एवं अध्यापकों के साथ ठीक नहीं था। कक्षा में तेज़ आवाज़ में बोलना, अप्रिय व्यवहार करना एवं चीखकर बोलना, अपशब्दों का प्रयोग, झगड़ा करना इत्यादि।

मैंने इन तीनों छात्राओं के साथ अलग से काम करने का सोचा। सबसे पहले मैंने इन तीनों के घर जाकर इनके घर में व्यवहार एवं कार्य को लेकर चर्चा की जिस से कई बातों की जानकारी मिली। इनके व्यवहार से कभी-कभी घर में अभिभावकों को भी दिक़्क़त का सामना करना पड़ता था। उन्होंने हमें विश्वास दिलाया कि वह भी घर पर अपनी बेटी का ख्याल रखेंगे और सहयोग भी करेंगे। मैंने उनसे कहा कि इनकी पढ़ाई-लिखाई की ज़िम्मेदारी मेरी बाक़ी इनके व्यवहार एवं किस तरह के कपड़े पहनकर स्कूल आना है, एक माता-पिता होने के नाते इस बात की ज़िम्मेदारी आपकी होनी चाहिए। बातों-ही-बातों में मैंने उनसे इस बात की इजाज़त ले ली कि स्कूल की छुट्टी के बाद इनको आधा घण्टे के लिए अलग से गणित पढ़ाऊँगा।

अब मैंने इन तीनों पर ध्यान देते हुए गणित विषय में इनके साथ स्कूल की छुट्टी के उपरान्त काम करना आरम्भ किया। जिसमें सबसे पहले कुछ हल्के सवालों के साथ इनको जोड़ा। उस सवाल के हल करने में क्या समझ में आया और जो सवाल हल नहीं हो सका उसमें क्या समझ में नहीं आया व सवालों को हल करने में होने वाली कठिनाई के बारे में चर्चा की, जिसमें निम्न बातें समझ में आईं -

- गणित विषय से भय
- कक्षा में ध्यान न देना
- गणित की मूलभूत अवधारणाओं की समझ न होना
- घर में सहयोग न मिलना

इनकी इन सभी बातों का हल मेरे पास नहीं था। हमने मिलकर यह बात तय की कि हम पिछली बातें नहीं सोचेंगे अपितु अपने सवालों को हल करेंगे। तीन माह बाद इन प्रश्नों पर पुन: विचार करेंगे। समय कैसे बीत गया पता नहीं चला। प्रयास और सहयोग के साथ उनमें बदलाव दिखने लगा। कक्षा में अपने विषय के सम्बन्ध में जानकारी जमा करना, सहपाठी एवं अध्यापकों के साथ चर्चा करना, अपने काम को पूरा करना और सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि अपने किए गए काम को समझ के साथ दूसरों के साथ साझा करना।

माता-पिता के सहयोग एवं विश्वास पर मैं पूर्ण होता हुआ नज़र आया। यह विश्वास मेरा उन छात्राओं पर था। हर माता-पिता अपने बच्चे के भविष्य को लेकर चिन्तित होते हैं और पढ़ाई की गम्भीरता की बात को समझ गए थे इसलिए समय-समय पर वह मुझसे फोन पर बातचीत कर लेते थे। पिछले कई महीनों की मेहनत अब रंग लाती हुई नज़र आई। कक्षा में उनका अन्य विद्यार्थियों के साथ व्यवहार में बदलाव दिखने लगा। अब गणित की कक्षा में सवालों को हल करने में उनको मज़ा आने लगा। सीखना-सिखाना दोनों तरफ से चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें मैंने भी उनसे बहुत कुछ सीखा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यह बात मुझे बेहतर लगती है - "एक अध्यापक वास्तविक अर्थों में नहीं सिखा सकता, जब तक कि वह स्वयं भी सीख न रहा हो चूँकि एक दीपक दूसरे दीपक को प्रज्वलित नहीं कर सकता जब तक उसके पास अपनी ज्योति न रहे।"

**सउद अहमद ख़ान**

शिक्षक, अज़ीम प्रेमजी स्कूल
दिनेशपुर, उधमसिंह नगर
saud.khan@azimpremjifoundation.org

# अध्यापकों के सीखने और प्रेरित होने में सहायक कारक

सुनील बिष्ट

स्कूल की शिक्षण-अधिगम संस्कृति में यह मान लिया जाता है कि कक्षा केवल विद्यार्थियों के सीखने का स्थान है और अध्यापक पर उन्हें शिक्षित करने की ज़िम्मेदारी है। लेकिन यह पारस्परिक क्रिया है जिसमें विद्यार्थी और अध्यापक दोनों सीखने की प्रक्रिया में शामिल होते हैं। अपने कक्षा अभ्यास के दौरान मैंने इसका अनुभव किया, जहाँ मुझे एक अलग दृष्टिकोण मिला। कोई कक्षा पूरी तरह से सार्थक तब होती है जब विद्यार्थी और अध्यापक दोनों सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा बनते हैं केवल विद्यार्थी नहीं। इस अनुभव से मुझे एहसास हुआ कि यदि कक्षा के कार्य-व्यवहार दृढ़तापूर्वक किए जाएँ तो अध्यापक समृद्ध विषय सामग्री के साथ अपने शिक्षण का निष्पादन बेहतर तरीके से कर सकते हैं और अन्य अध्यापकों को भी इससे मदद मिल सकती है। इसके लिए अध्यापक समुदाय में उचित योजना, साझाकरण और चर्चा का बहुत महत्त्व है। यदि कक्षा अभ्यासों पर चिन्तन किया जाए तो बहुत सारी अन्तर्दृष्टि मिलती है।

यहाँ पर मैं विद्यार्थियों और सहकर्मियों के बीच प्रश्न पूछने, साझाकरण और चर्चा के लाभों और प्रभावों पर ध्यान देना चाहता हूँ। मेरे सामने महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि वह कौन-सी चीज़ थी जो एक अध्यापक के रूप में मुझे सीखने की ओर ले गई और इस प्रकार के अभ्यासों के बाद मैंने अपने विचारों में कौन-से परिवर्तन देखे?

यह लेख मेरे विज्ञान की कक्षा डायरी का एक हिस्सा है। पौधा और उसके भाग (यानी जड़, तना, पत्ती और फूल) शीर्षक प्रकरण को कक्षा छह के सत्ताईस बच्चों को पढ़ाया गया। इस लेख को लिखने का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि जब कोई अध्यापक कक्षा में इस तरह के अभ्यास करते हैं जिसमें प्रश्न पूछने, चर्चा करने और विचारण के बहुत अवसर मिलते हों तो उन्हें परिज्ञान कैसे मिलता है और वे सीखते कैसे हैं? वे कौन-सी चीज़ें थीं जिन्होंने एक विज्ञान के शिक्षक के रूप में मुझे प्रेरित किया, चुनौती दी और सीखने के ऐसे अवसर दिए जो मेरी अपेक्षाओं से परे थे। इन अनुभवों को सहकर्मियों के साथ साझा करने से उनके अधिगम में भी संवर्धन हुआ।

### पहला दिन

पहला दिन प्रकरण के परिचय से शुरू हुआ जिसमें विद्यार्थियों से कहा गया कि वे पौधे और उसके भाग सम्बन्धी अपने पूर्व ज्ञान को साझा करें। उन्होंने जो कुछ बताया उसे श्यामपट्ट पर सूचीबद्ध किया गया और उनके दैनिक जीवन के प्रेक्षण को समझने की कोशिश की गई कि भूमि से ऊपरी और भूमिगत भाग को क्या कहा जाता है? उन सभी को इस बात की सामान्य समझ थी कि ऊपरी भाग को तना (प्ररोह) और भूमिगत भाग को जड़ कहा जाता है। फिर प्ररोह के विभिन्न हिस्सों पर चर्चा हुई। चूँकि सभी को जड़ और तने की समझ थी इसलिए मैंने उन्हें कुछ नमूने दिए और जड़ व तने में विभाजित करने के लिए कहा। जब उन्होंने अपनी जानकारी साझा की तो यह पाया गया कि सभी विद्यार्थियों को आलू, प्याज, अदरक, केले के पेड़ आदि में जड़ और तने की अच्छी समझ थी। फिर हमने जड़ और तने के गुण, पर्वसन्धि या गाँठ, पर्व, कली और निशान आदि के बारे में कक्षा में चर्चा की और इन सभी की मूलभूत जानकारी पाई। मेरी योजना में समय को दो हिस्सों में विभाजित किया गया था, पहले भाग में हमने सैद्धान्तिक हिस्से पर चर्चा की और दूसरे भाग में स्कूल परिसर का दौरा और उन चीज़ों का अवलोकन किया जिन्हें कक्षा में पढ़ा था।

कक्षा के कार्य-व्यवहार के दौरान कई क्षण ऐसे भी आए जिन्होंने इस प्रक्रिया को बहुत रोचक बनाया, अधिगम को बढ़ाया और जिज्ञासा को प्रोत्साहित किया। बच्चों द्वारा प्रश्न पूछना और उनके साथ हुई चर्चा कक्षा योजना की कुछ

**विचार-मन्थन**

- बीज कैसे अंकुरित होते हैं?
- बीज के किस हिस्से में पूर्व-वृद्धि होती है – जड़ या तना?

- क्या यह ज़रूरी है कि जड़ ज़मीन के अन्दर ही बढ़े? क्या प्ररोह के समान यह ऊपरी दिशा में बढ़ सकती है?
- यदि बीज को दो अलग हिस्सों में विभाजित किया जाए तो क्या वह अंकुरित होगा?

महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं। ये सारी गतिविधियाँ कक्षा योजना के समानान्तर चल रही थीं।

प्रश्न और चर्चा के इस प्रकार के स्तर ने एक अलग ही प्रकार के अधिगम की नींव रखी। जिस तरह के प्रश्न उभरकर सामने आए उनका उल्लेख ऊपर दिए गए बॉक्स में किया गया है। ये वे प्रश्न हैं जो आगे की खोजबीन और जाँच-पड़ताल का और अन्ततः हमारे अधिगम का आधार बने।

इस यात्रा का एक और दिलचस्प पहलू यह था कि अपने सहकर्मियों के साथ इसका साझाकरण किया गया, मुख्यतः श्री दीपक और सुश्री कणिका के साथ, जिनके सुझावों ने प्रयोग की व्यवस्था करने और अवधारणात्मक स्तर पर मेरी मदद की।

यहाँ प्रश्नों का क्रम और उनके सम्बन्धित प्रयोग **अ, ब, स और द** से चिह्नित किए गए हैं।

**अ : अंकुरण प्रक्रिया की खोज करना और उसे समझना**

जब हम कक्षा में जड़ के बारे में और बीज में उसके विकास पर चर्चा कर रहे थे तो एक विद्यार्थी ने बीज में अंकुरण की प्रक्रिया जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। सवाल यह था कि इस प्रक्रिया को समझने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या होगा? कुछ विद्यार्थियों ने कहा कि हम बीज को पानी में दो-तीन दिन तक रख सकते हैं।

उपयोग में लाए गए उपकरण : एक बीकर, रुई, चने का बीज, पानी, आदि।

समयावधि : 3-4 दिन

विधि : विद्यार्थियों और अध्यापक द्वारा नियमित अवलोकन

निष्कर्ष : 3-4 दिन के नियमित अवलोकन से हम सभी में अंकुरण की प्रक्रिया की सामान्य समझ विकसित हुई। कुछ विद्यार्थियों ने अपने पिछले अवलोकन को साझा किया कि नमी पाकर बीज अंकुरित होते हैं। इस चर्चा के दौरान एक अन्य विद्यार्थी के मन में यह सवाल उठा कि यदि बीज को दो भागों में विभाजित कर दिया जाए तो क्या वह अंकुरित होगा? एक छात्रा ने कहा कि हाँ, अंकुरण होगा और अपना अनुभव साझा करते हुए उसने कहा कि कुछ विशेष बीज तब तक अंकुरित नहीं होते जब तक उन्हें विभाजित या अलग न किया

जाए। उसने धनिया का उदाहरण देते हुए समझाया कि जब ये बीज विभाजित होते हैं तभी अंकुरित होते हैं। तब हमने इसे देखने के लिए भी एक प्रयोग किया। मैं भी यह देखना चाहता था कि क्या होगा।

**ब : जड़ और प्ररोह में वृद्धि की जाँच**

सामग्री : बीज, बीकर, मिट्टी, पानी, मार्कर, काग़ज़ का टुकड़ा

कार्यविधि : इस प्रयोग के लिए हमने बीकर में गीली मिट्टी भरी और इसमें दो बीज बोए, एक बीज का अग्र भाग ऊपर की ओर था तो दूसरे का नीचे की ओर। फिर हमने बीकर का नियमित रूप से अवलोकन किया। मैंने अपने सहकर्मियों के साथ इस प्रयोग की चर्चा की। इसके भौतिकशास्त्रीय पहलू पर मैंने श्री दीपक के साथ चर्चा की कि क्या जड़ के विकास की दिशा तय करने में गुरुत्वाकर्षण की कोई भूमिका है? सुश्री कणिका के साथ मैंने जीवविज्ञान के पहलू पर चर्चा की।

**इससे आपसी बातचीत का अवसर मिला और दो विषयों के बीच सम्बन्ध बना।**

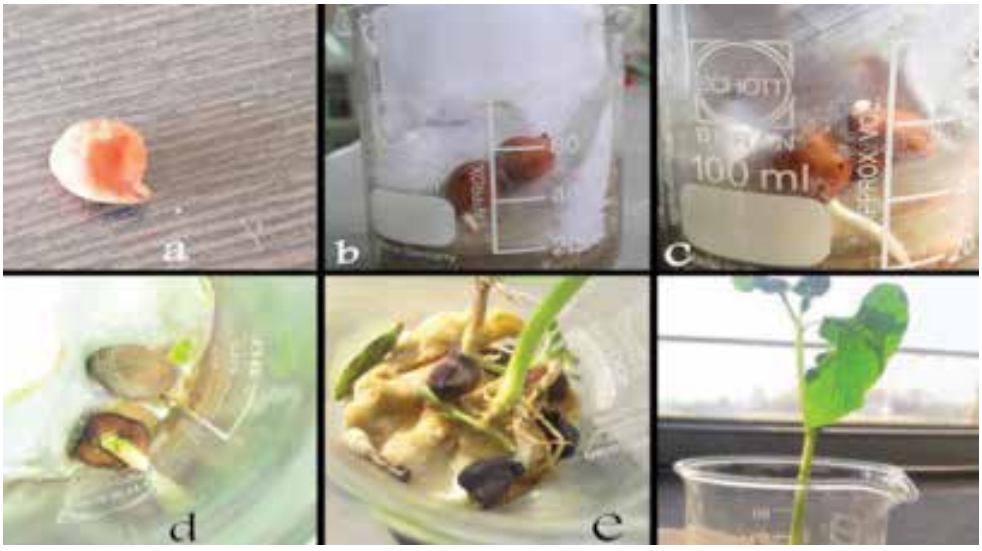


इस चित्र में बीज से पौधे तक की पूरी यात्रा देखी जा सकती है। इस प्रयोग से हमने ये निष्कर्ष निकाले कि :

- बीज के एक भाग यानी कि जड़ की शुरुआती वृद्धि हमेशा तेज़ी-से हुई। दूसरे भाग की वृद्धि कुछ दिनों बाद हुई।
- हमारे अवलोकन के अनुसार शुरू में जड़ की वृद्धि की दर तेज़ थी और कुछ समय बाद प्ररोह वाला भाग जड़ की तुलना में अधिक तेज़ी से बढ़ा।

'क्या जड़ लम्ब रूप से ऊपर की ओर बढ़ सकती है?' एक विद्यार्थी ने तुरन्त पूछा।

**स : एक विभाजित बीज में अंकुरण की जाँच**

सामग्री : बीकर, रुई, पानी, विभाजित बीज आदि।

प्रक्रिया : चने और सेम के बीज विभाजित किए गए और उन्हें गीली रुई में रखकर बीकर में रखा गया। इसका अवलोकन नियमित रूप से किया गया।

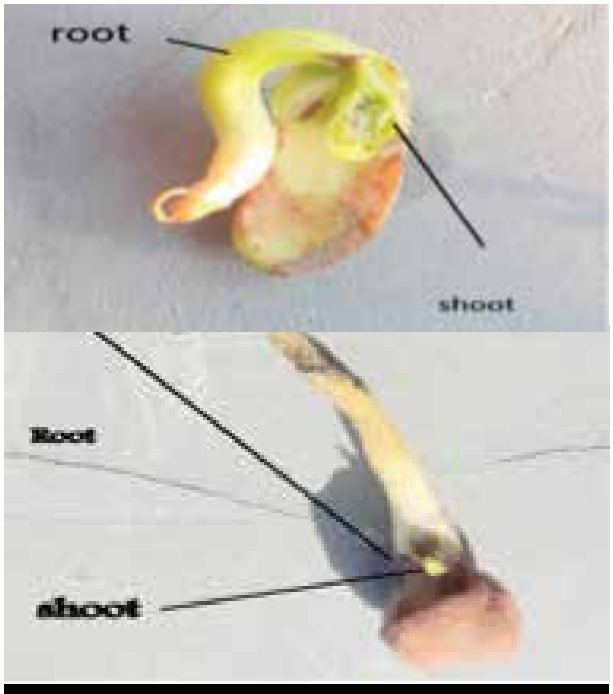


ये चित्र दिखाते हैं कि जड़ के विकास के मुकाबले प्ररोह का विकास थोड़ा धीरे होता है।

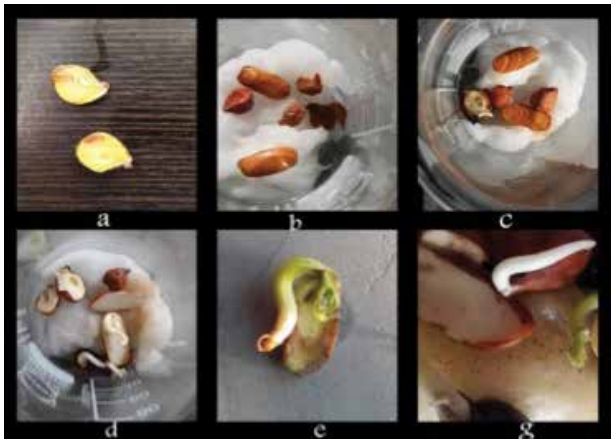


अंकुरित हुए विभाजित बीज

टुकड़ा बीज अंकुरित

प्रयोग : विभाजित बीज में अंकुरण

निष्कर्ष : 3-4 दिन के बाद यह देखा गया कि बीज के विभाजित हिस्सों में अंकुरण उसी दर से हुआ जितना कि पूरे बीज में हुआ था।

**द : जड़ के विकास और गति की खोज करना**

सामग्री : चने के बीज, बीकर, मिट्टी, पानी, मार्कर, काग़ज का टुकड़ा

कार्यविधि : यहाँ चने के दो बीज गीली मिट्टी से भरे बीकर में रखे गए, एक बीज का अग्र भाग ऊपर की ओर था तो दूसरे का नीचे की ओर। नियमित रूप से इनका अवलोकन किया गया।

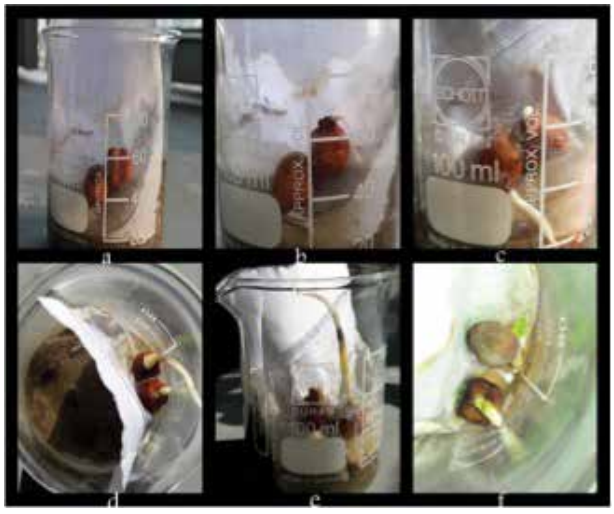

प्रयोग : ऊपर और नीचे की दिशा में जड़ का विकास

निष्कर्ष : पूरी प्रक्रिया के दौरान निम्नलिखित बिन्दुओं को अवलोकित किया गया।

- जो बीज ऊपरी दिशा की ओर था उसके अंकुरण की गति धीमी थी जबकि निचली दिशा की ओर वाले बीज का विकास जल्दी हुआ।
- ऊपरी दिशा वाले बीज का मूलांकुर या कली नीचे की ओर झुकी।
- जब निचली दिशा वाला बीज ऊपर की ओर मुड़ा तो वृद्धि रुक गई।

ये सभी प्रयोग विद्यार्थियों द्वारा डिज़ाइन किए गए हैं और पूर्व-प्रदर्शित प्रयोगों का सत्यापन मात्र नहीं हैं।

**सुनील बिष्ट** अज़ीम प्रेमजी स्कूल, दिनेशपुर, उत्तराखण्ड में विज्ञान के शिक्षक हैं। वे पिछले ढाई सालों से यहाँ पढ़ा रहे हैं। उन्होंने भौतिक विज्ञान में एम.एससी. किया है। उन्हें विज्ञान के अध्यापन, विज्ञान के सरल प्रयोग/खिलौनों की रचना करने एवं विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने में रुचि है। उनसे sunil.bisht@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

# क्या अधिगम हुआ?

तपस्या साहा

मैं काफी अर्से से अध्यापिका रही हूँ। लेकिन आज मैं उन अनुभवों के बारे में बात नहीं कर रही। आज तो मैं एक अलग तरह के शिक्षण अनुभव के बारे में लिखने जा रही हूँ।

पिछले कुछ समय से मैं अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में युवा पुरुषों और महिलाओं के लिए कार्यशाला का संचालन कर रही हूँ; इस बार मुझे शोरापुर के जिला संस्थान के सदस्यों के साथ कार्य करना था। मुख्य रूप से मेरा कार्य प्रतिभागियों के 'सामाजिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य और विषय सम्बन्धी ज्ञान' का विकास करना था। इसका मतलब यह था कि मुझे इन विषयों पर मॉड्यूल विकसित करना था और कार्यशाला के रूप में इस समूह की मदद करना था। अधिकांश कार्यशालाओं की अवधि तीन से पाँच दिनों की थी।

### प्रतिभागियों की पृष्ठभूमि

प्रतिभागियों की उम्र 27 से 38 वर्ष की थी और वे इतिहास या राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त कर चुके थे। उनमें अधिकतर स्कूल के अध्यापक तो नहीं थे लेकिन कुछ सालों से वे विभिन्न सरकारी स्कूलों के सामाजिक विज्ञान के अध्यापकों के साथ काम कर रहे थे।

वे कर्नाटक राज्य बोर्ड के राजनीति विज्ञान और इतिहास के पाठ्यक्रम से तो काफी परिचित थे लेकिन भूगोल विषय से उनका अधिक परिचय नहीं था। इसके लिए उन्होंने जो दो कारण बताए वे ध्यान देने योग्य हैं। सरकारी विद्यालयों में सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों को ही भूगोल की अवधारणाएँ समझना मुश्किल लगता था; एक तो यह उनका विषय नहीं था; दूसरे पाठ्यपुस्तक की भाषा विषय सम्बन्धी बातों पर बहुत कम प्रकाश डालती थी, इसलिए स्वयं सीख पाना भी आसान नहीं था। नतीजतन, भूगोल वाला हिस्सा पढ़ाया ही नहीं जाता था।

जब मैंने अपने समूह से पूछा कि उनकी मुझसे क्या अपेक्षाएँ हैं तो उन्होंने अपने मुख्य सरोकार मेरे सामने रखे जो इस प्रकार थे - इतिहास शिक्षण की आवश्यकता की समझ, भूगोल में निहित विभिन्न अवधारणाओं की समझ, भारतीय संविधान की अवधारणा की समझ और इन सबको कक्षा में पढ़ाने का तरीक़ा। वे चाहते थे कि मैं ऐसे उपयुक्त क्रियाकलापों का निर्माण करूँ जो 12 से 14 वर्ष के विद्यार्थियों के लिए ठीक रहें।

### मेरी चुनौती

मुझे कन्नड़ भाषा का बहुत कम ज्ञान है। मैं अँग्रेज़ी और हिन्दी बोल, पढ़ और लिख सकती हूँ लेकिन प्रतिभागी कन्नड़ भाषा में बहुत सहज थे और कुछ को अँग्रेज़ी और हिन्दी का थोड़ा ज्ञान था।

### एक सुगमकर्ता के रूप में मेरी भूमिका

मॉड्यूल प्रस्तुत करते समय मैंने भाषा अवरोध की चुनौती को ध्यान में रखा और स्व-अधिगम के तरीक़ों को उसमें मिश्रित करते हुए एक संरचनात्मक विधि का पालन किया।

किसी विषय को पेश करते समय मैं उसमें स्पष्टता लाने के लिए कभी कहानी का सहारा लेती, कभी वीडियो दिखाती या फिर प्रश्न पूछती। कभी-कभी मैं विशेष वेशभूषा धारण करके अभिनय करती। मैंने पढ़ने के लिए अँग्रेज़ी में विषय से सम्बन्धित दिलचस्प सामग्री जुटाई और महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं पर क्रियाकलाप और खेल तैयार किए। ऐसा करते समय मैंने अँग्रेज़ी और हिन्दी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया।

सुगमीकरण के दौरान, मैंने उन सदस्यों से कन्नड़ भाषा में चर्चा करने को कहा जो हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषा समझते थे। हमने मानचित्रों और चित्रों का उपयोग किया जिन्हें मैंने तथा अन्य लोगों ने बनाया था और जो अँग्रेज़ी और कन्नड़ में लेबल किए गए थे। इसमें कोई शक नहीं कि हम धीमी गति से चल रहे थे। सारी पाठ्य सामग्री अँग्रेज़ी में थी इसलिए शुरुआत में उनके लिए यह वाकई एक चुनौती थी। कुछ नियम भी थे। कन्नड़ में नोट्स लेने और चित्र बनाने के कार्य व्यक्तिगत रूप से किए जाने थे। फिर इन्हें समूह-गतिविधि में प्रयोग में लाना था। यह कार्यविधि बाद में स्व-अधिगम में सहायक होने वाली थी।

मैंने यह बात सुनिश्चित की कि मैं जिन अवधारणाओं और शब्दों का उपयोग करूँ, उन्हें हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषा समझने वाले समूह कन्नड़ में दोहराएँ। मैंने उनसे श्यामपट्ट पर कन्नड़ में मुख्य बिन्दु लिखने के लिए कहा और उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वे बेझिझक उन सारे सवालों को पूछें जो उनके दिमाग में उठ रहे थे। मैंने उनकी प्रत्येक शंका

और प्रश्न का उत्तर बड़ी ईमानदारी के साथ दिया। तो समूह में जो भी सवाल पूछता उसे फ़ायदा होता, अतः दूसरे लोग भी प्रोत्साहित हुए और प्रश्न पूछने के लिए आगे आए। मैं विषय के बारे में उनकी समझ और उनके अनुभव ध्यान से सुनती। हर कार्यशाला के अन्त में एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की गई जिसमें उन सारे उदाहरणों, सन्दर्भों और प्रश्नों का उल्लेख होता जिन पर चर्चा हुई थी।

समूह-पठन, जिग-सॉ पठन और प्रत्येक समूह द्वारा प्रस्तुति जैसी गतिविधियों ने प्रतिभागियों का आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद की। नियमानुसार उनके समन्वयकों ने सदस्यों को एक साथ बैठने के लिए प्रेरित किया, अपने नोट्स व सीखी हुई बातें साझा कीं और हर कार्यशाला के बाद मॉड्यूल तैयार किए।

**वास्तव में कार्य कैसे सफल हुआ?**

प्रतिभागी स्व-अधिगम, समूह-अधिगम और साथियों के साथ अधिगम के माध्यम से सीखने में सक्षम हुए। मैं यहाँ एक बात अवश्य कहना चाहूँगी कि इस पूरी गतिविधि में मेरी भूमिका गौण थी। वास्तव में देखा जाए तो प्रतिभागियों ने अपने स्वयं के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किए थे, उस ओर जाने के लिए इस कार्यशाला ने उनका मार्गदर्शन मात्र किया।

सबसे रोचक बात यह है कि हमने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की संस्कृति के अनुरूप बहुत स्नेहपूर्ण रिश्ते साझा किए। यहाँ हम सबका आदर करते हैं और एक-दूसरे को वैसे ही स्वीकार करते हैं जैसे हम हैं। हम एक-दूसरे की क्षमताओं पर पूरा भरोसा व विश्वास रखते हैं और हम सभी फ़ाउण्डेशन के साझे लक्ष्य - स्कूल के बच्चों को 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना' - को पाने के लिए प्रयासरत हैं।

मैं वयस्कों के साथ कार्य कर रही थी और इसलिए मुझे उन्हें प्रेरित करने की चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा, मैंने सिर्फ़ यह प्रयास किया उनमें ज्ञान की खोज के लिए दिलचस्पी, जिज्ञासा और रोशनी प्रज्वलित हो जाए; एक अध्यापिका होने के नाते मुझे पता था कि केवल विषय-सामग्री का ज्ञान दे देने से प्रतिभागियों की सहायता नहीं होगी। तीसरी कार्यशाला के बाद मैंने उनसे उनकी अपेक्षाओं के बारे में पूछा और उनके सुझावों के आधार पर अपने मॉड्यूल बनाए।

**क्या अधिगम हो रहा था? यह सवाल मुझे हमेशा परेशान करता रहा।**

कुछ प्रतिभागी असन्तुष्ट थे क्योंकि वे भाषा अवरोध के कारण मेरी बात समझ नहीं पा रहे थे और अँग्रेज़ी की पाठ्य सामग्री पढ़ने के लिए तैयार नहीं थे। चूँकि मुझे पाठ्य सामग्री के उचित अनुवाद नहीं मिल पाए, इसलिए मैंने अँग्रेज़ी पाठ्य सामग्री पर ही ज़ोर दिया। शुरू में तो प्रतिभागी साथ मिलकर पाठ्य सामग्री समझने के लिए जूझ रहे थे, पर उन्होंने हार नहीं मानी और धीरे-धीरे पाठ्य सामग्री का आनन्द लेना शुरू कर दिया। ऐसा लगता है कि वे न केवल व्यक्तिगत स्तर पर समझकर ज्ञान का निर्माण कर रहे थे बल्कि अपने कार्यों में उसका प्रयोग भी कर रहे थे।

**यह सब कैसे हुआ**

शायद ज्ञान प्राप्त करके समर्थ होने या अपनी क्षमता बढ़ाने की भावना के कारण प्रतिभागी डटे रहे। वे जिन अध्यापकों के साथ नियमित रूप से बातचीत करते रहते थे, उन्होंने जिन विषयों या प्रकरणों के बारे में पूछा था, उससे सम्बन्धित ज्ञान को समझने या प्राप्त करने की अत्यावश्यकता, रुचि और जिज्ञासा उन्हें प्रेरित करती रही। वे खुद भी उन बातों को सीखना चाहते थे जो उन्होंने पूछी थीं। जो कुछ वे चाहते थे उसे पाकर वे प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। अन्तिम और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि समूह ने मिलकर सीखा, इसलिए किसी एक पर सीखने का बोझ नहीं पड़ा।

मैं भाषा अवरोध के होते हुए भी ख़ुश थी क्योंकि अधिगम फला-फूला था।

---

**तपस्या साहा** पिछले आठ वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्यरत हैं। इसके पहले वे कई वर्षों तक माध्यमिक और उच्चतर स्तर की कक्षाओं में भूगोल का अध्यापन करती रही हैं। फ़ाउण्डेशन में वे विभिन्न ज़िला संस्थानों के सदस्यों के साथ भूगोल विषय की संसाधिका के रूप में कार्य करती हैं। वे विभिन्न अमूर्त भौगोलिक अवधारणाओं को सरल तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास करती हैं। उन्हें भूगोल विषय में उत्कट रुचि है। उनसे tapasya@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

Printed and Published by Manoj P on behalf of Azim Premji Foundation for Development;
Printed at Suprabha Colorgrafix (P) Ltd., No. 10, 11, 11-A, J.C. Industrial Area, Yelachenahalli, Kanakapura Road, Bangalore 560062.

Published at Azim Premji Foundation for Development, Azim Premji University Pixel B Block, PES College of Engineering Campus, Electronic City, Bangalore 560100; Editor: Prema Raghunath

अगला अंक

# कक्षा-कक्ष अनुभव : भाग 2

Earlier Issues of the Learning Curve may be downloaded from **http://teachersofindia.org/en/periodicals/learning-curve** or **http://www.azimpremjifoundation.org/Foundation_Publications or http://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/resources-learning-curve.aspx**

No. 134, Doddakannelli
Next to Wipro Corporate Office
Sarjapur Road, Bangalore - 560 035. India
Tel: +91 80 6614 4900/01/02  Fax: +91 80 6614 4903
E-mail: learningcurve@azimpremjifoundation.org
**www.azimpremjifoundation.org**

*Also visit Azim Premji University website at*
**www.azimpremjiuniversity.edu.in**

Azim Premji University

A publication from
Azim Premji University

For suggestions or comments and to share your views or personal experiences, do write to us at **learningcurve@azimpremjifoundation.org**